लाला रतनलालजी जैन

आप आगरे के प्रतिष्ठित महानुभाव हैं। आप की प्रकृति बड़ी कोमल और स्वभाव सरल है। जो भी आप से एक बार मिलता है वह आप के सौजन्य को कभी नहीं भूलता। आप के उदार हृदय की भी प्रशंसा कुछ कम नहीं है। आपने अनेक संस्थाओं को दान दिया है और दे रहे हैं। जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति रतलाम के आप और आपकी मातेश्वरी श्रीमती अनारदेवी संरक्षक हैं। इस वर्ष अभी आपने निर्ग्रन्थ प्रवचन के अँग्रेजी अनुवाद की १००० प्रतियाँ और अन्तकृत सूत्र की १००० प्रतियाँ निज खर्च से प्रकाशित करवा कर श्रीवीर वाचनालय लोहामन्डी आगरा को भेंट की है।

आपका—

मास्टर मिश्रीमल

मंत्री श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक

समिति, रतलाम



लाला रतनलालजी जैन, आगरा

जैन दिवाकर पं० मुनि श्री चौथमलजी महाराज

आप की प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाना है। आपने कई राजा-महाराजा एवं साधारण जनता को उपदेश देकर जैन धर्म को गौरवान्वित किया है। उन से अहिंसा विषयक ढेरों बन्द पट्टे आपने लिखवाये हैं। इसके फलस्वरूप हजारों पशु तलवार की घाट से बच कर आप को दुहाई दे रहे हैं। आपने साहित्य सेवा द्वारा भी जनता को यथेष्ट लाभ पहुँचाया है। भगवन्! आप चिरायु हों और आपके द्वारा साहित्य का काफी प्रचार हो।

आपका—

सौभाग्यमल महता, जावरा

अध्यक्ष श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक

समिति, रतलाम

श्री मदन्तकृद्दशांग-सूत्रम्

[पीयूषधारा टीका सहित]

अनुवादक —

श्री जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज के सुशिष्य गणिवर्य
साहित्यप्रेमी पण्डित मुनि श्री प्यारचन्दजी महाराज

प्रकाशक :—

सेठ भिक्कामल छोटेलाल फर्म के मालिक सेठ रतनलाल मित्तल, लोहामण्डी, आगरा

प्रथमावृत्ति १०००] मूल्य बारह आने [वीराब्द २४६३ विक्रमाब्द १९९३

निवेदन

भगवान् महावीर स्वामी के मुखारविन्द से भाषित अङ्ग शास्त्रों में यह आठवाँ अङ्ग अन्तकृत सूत्र भी है जिस में आठ वर्ग हैं। वर्षभर में कम से कम एक वार तो इसे आद्योपान्त पढ़लेना प्रत्येक जैनियों का परम कर्तव्य है। इस में उन महापुरुषों का उल्लेख है जिन्हों ने सम्पूर्ण कर्मों का अन्त कर मुक्ति प्राप्त की है। इन्हीं महापुरुषों के आदर्शों का अनुकरण करने के लिए इसे आठ दिनों में पढ़लेना परमावश्यक है। मुनि महाराज भी प्राय. इस को पर्यूषण पर्व के आठ दिनों में प्रत्येक चातुर्मास में पढ़ते हैं। परन्तु शुद्ध मूल पाठ और उस का भावार्थ शुद्ध हिन्दी में छपा हुआ ही पर्याप्त नहीं था। इसी लिए प्रातःस्मरणीय पूज्यवर श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के पाटानुपाट शास्त्र विशारद बालब्रह्मचारी पूज्यवर श्री मन्नालालजी महाराज के पट्टाधिकारी शास्त्रज्ञ धैर्यवान् पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज के संप्रदायानुयायी जगद्वल्लभ जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज के सुशिष्य साहित्य प्रेमी गणीवर्य पण्डित मुनि श्री प्यारचन्दजी महाराज ने मूल अन्त कृत सूत्र को संशोधन कर उस का सरल सुबोध गम्य हिन्दी में भावार्थ लिखा है। जिसको मैंने लोकोपयोगी समझ कर अपने निजी खर्च से प्रकाशित कराया है और श्री वीर वाचनालय लोहामण्डी आगरा को भेंट किया है। इस की आमद श्री वाचनालय की उन्नति में सहायक हो। इसे पढ़कर आप अपना आत्मिक लाभ उठावेगे, इसी में मैं अपना सौभाग्य समझूँगा।

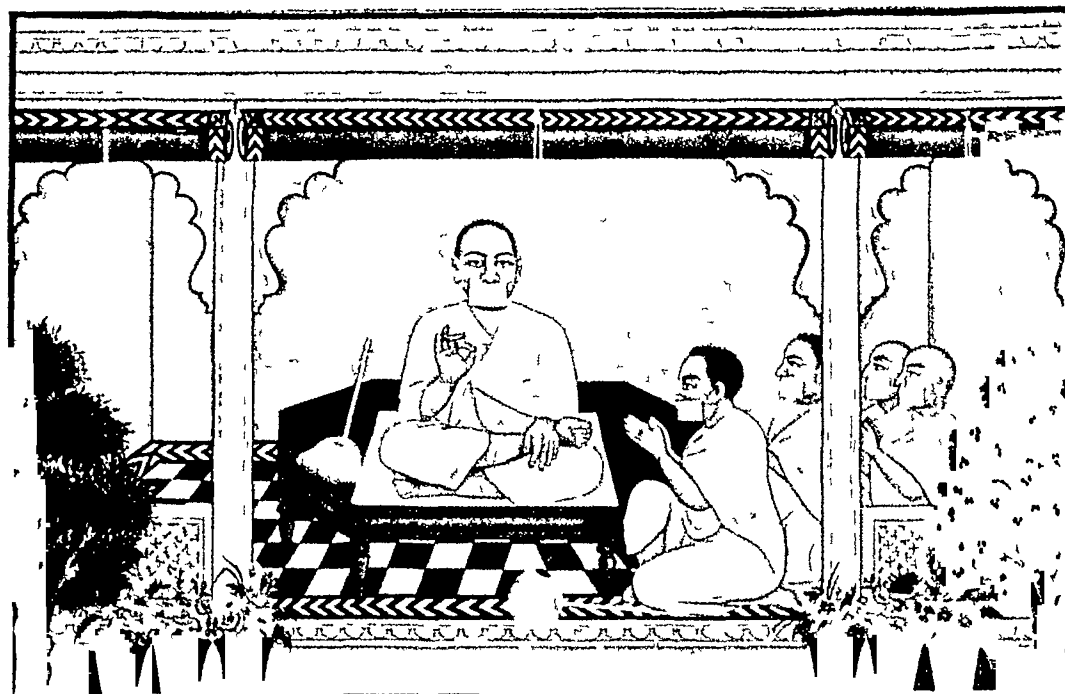
लोहामण्डी, आगरा

प्रथम भाद्रव पर्यूषण पर्वाधिराज संवत् १९९२

आपका

रतनलाल जैन मित्तल

चित्र सिर्फ परिचय के लिये



श्रीमान् सुधर्मस्वामीजी श्री जम्बूस्वामी को उपदेश फरमा रहे है।

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम.

जन्म दाता

श्रीमान् जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पंडित मुनि श्री चौथमलजी महाराज

स्तम्भ

श्रीमान् दानवीर राय बहादुर सेठ कुंदनमलजी लालचन्दजी सा० — ब्यावर
,, सेठ नेमीचन्दजी सरदारमलजी सा० — नागपुर
,, ,, सरूपचन्दजी भागचन्दजी सा० — कलमसरा
,, ,, पुनमचन्दजी चुन्नीलालजी सा० — न्यायडोंगरी
,, ,, बहादरमलजी सूरजमलजी सा० — यादगिरी
,, ,, तखतमलजी सौभागमलजी सा० — जावरा

संरक्षक

,, ,, श्रेमलजी लालचन्दजी सा० — गुलेदगढ़
,, ,, लाला रतनलालजी सा० मित्तल — आगरा

श्रीमान् सेठ उदेचन्दजी छोटमलजी सा० मूथा — उज्जैन
,, ,, छोटेलालजी जेठमलजी सा० कनेरा — (मेवाड़)
,, ,, मोतीलालजी सा० जैन वैद — मांगरोल
,, ,, सूरजमलजी साहब — भवानीगंज
,, वकील रतनलालजी सा० सर्राफ — उदयपुर
,, ,, कालूरामजी सा० कोठारी — ब्यावर
,, ,, कुंदनमलजी सरूपचन्दजी सा० — ब्यावर
,, , देवराजजी सा० सुराना — ब्यावर
,, ,, नाथूलालजी छगनलालजी सा० दूगड़ — मल्हारगढ़
,, ,, ताराचन्दजी डाहजी पुनमिया — सादड़ी
श्री महावीर जैन नवयुवक मंडल, — चित्तौड़गढ़
श्री श्वे० स्था० श्रीसंघ, बड़ी सादड़ी — (मेवाड़)

श्रीमती पिस्ताबाई, लोहामन्डी	आगरा
,, राजीबाई, बरोरा	सी० पी०
,, अनारबाई, लोहामंडी	आगरा
,, चन्द्रपतिबाई	सब्जी मंडी, देहली
श्रीमान् मोहनलालजी सा० वकील	उदयपुर
श्रीमान् सेठ मिश्रीलालजी नाथूलालजी सा० बाफणा	कोटा
,, ,, लखमीचन्दजी संतोकचन्दजी सा०	मु० मुरार
,, ,, चम्पालालजी सा० अलीजार	ब्यावर
,, ,, नेमीचन्दजी शंकरचन्दजी सा०	शिवपुरी
,, ,, फूलचंदजी सा० जैन	कानपुर
श्रीमान् सेठ इन्दरमलजी जैन	हाथरस

मेम्बर

श्रीमान् मन्नालालजी चाँदमलजी	ताल
,, बंङूलालजी हरकचंदजी	नसीराबाद
,, गणेशीलालजी चत्तर	सिवनी मालवा
,, सुरजमलजी जैन वैद	मॉंगरोल
,, उम्मेदमलजी भँवरलालजी वैद	मॉंगरोल
,, घासीलालजी श्रीनारायनजी सा०	वेतेड़
,, सेठ रामचन्द्रजी सा० पल्लीवाल जैन	गंगापुर सीटी

श्री मदन्तकृद्दशाङ्ग-सूत्रम् ।

(पीयूषधारा टीका सहित)

प्रथम-वर्ग

मूलः—तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं नयरी होत्था, वण्णओ। तत्थ णं चंपाए नयरीए उत्तर पुरत्थिमे दिसी भाए एत्थणं पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था। वणसंडे वण्णओ। तीसेणं चंपाए नयरीए कोणिए नामं राया होत्था। महया हिमवंत वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मे थेरे जाव पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामानुगाम वइज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपाए नयरीए जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव समोसरिए। परिसया निग्गया जाव परिसया पडिगया। तेणं कालेणं तेणं

समणएणं अज्जसुहम्मस्स अंतेवासी अज्ज जंबू जाव पज्जूवासमाणे एवं वयासी जइणं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पराणत्ते, अट्ठमस्स णं भन्ते ! अंगस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पराणत्ते ?

भावार्थः—पञ्चम आरे के प्रारम्भ में, श्री भगवान् महावीर स्वामी के प्रथम पट्टाधीश, सुधर्मस्वामी के समय में, 'चम्पा' नामक एक नगरी थी, जो बड़ी सुन्दर और मनोहर थी। इसकी सुन्दरता का सविस्तर वर्णन, यदि कोई पाठक चाहें तो औपपातिक सूत्र में, अवलोकन करें। इस नगरी के उत्तर और पूर्व दिशा के मध्यस्थ ठीक इशान्य कोण में, 'पूर्णभद्र' नामक एक मनोहर उपवन, विविध प्रकार के वृक्षों से सुशोभित था। उस 'चम्पा' नगरी में, उस समय 'कौणक' नामक एक राजा राज करते थे। ये अपने समय के एक बहुत ही बड़े राजा थे। अपने राज-कार्य का सञ्चालन वे न्याय, नियम और नीति के अनुसार करते थ। उसी समय, स्थविर आर्य, श्री सुधर्म स्वामी, अपने पाँच सौ [1] शिष्यों के परिवार के साथ, नियमानुसार एक ग्राम से दूसरे ग्राम में, सुख पूर्वक

१—'पाँच सौ शिष्यों के साथ' का अभिप्राय यह है कि उस समय उनके आधिकार मे ५०० शिष्य थे। अर्थात् ५०० शिष्य श्री सुधर्म स्वामी की आज्ञा से विचरते थे। इसका अर्थ यह नहीं है, कि ५०० शिष्य हर समय उनके साथ रहते थे।

विहार करते हुए, उसी पूर्व वर्णित 'चम्पा' नगरी के 'पूर्णभद्र' उद्यान में पधारे।

श्री सुधर्म स्वामी के पदार्पण का शुभ सन्देश पाकर, नगर-निवासी लोग स्वामीजी की अमृतमयी वाणी श्रवण करने के लिए उपस्थित होने लगे। स्वामीजी ने धर्म की खूब ही विवेचना की, जिसे सुनकर श्रोता-समाज मुग्ध हो गया। व्याख्यान के समाप्त हो जाने के पश्चात्, जनता पुनः लौट कर शहर में आई।

उसी समय, आर्य-श्री सुधर्मस्वामी के शिष्य श्री जम्बू स्वामी ने अपने गुरु की सेवा में विनयपूर्वक कहा, "भगवन्! धर्म का उत्थान करनेवाले श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी ने, जो मुक्ति में पधार गये हैं, उन्होंने सातवें अङ्ग उपासकदशाङ्ग का, जो भाव फर्माया है वह तो मैंने आपके श्री-मुख से श्रवण किया, किन्तु आठवाँ अङ्ग. जो 'अन्तगड़ दशा' है, उसका क्या तात्पर्य है? अर्थात् उसमें किन-किन बातों का वर्णन है, वह कृपा करके फर्मावें।"

मूलः-एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अन्तगड़दसाणं अठ्ठ वग्गा पराणत्ता। जइणं भंते समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगड़दसाणं अट्ठ वग्गा पराणत्ता, पढमस्स णं भंते! वग्गस्स अंतगड़दसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कहइ अज्झ-

यणा पराणत्ता ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगड़दसाणं पढ़मस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पराणत्ता, तं जहा–गोयम समुद्द सागर, गंभीरे चेव होइ थिमिते य। अयले कांपिल्ले खलु, अक्खोभ पसेणती विराहू ॥ १ ॥

भावार्थः–हे जम्बू ! भगवान् महावीर स्वामी ने श्री अन्तगढ सूत्र के आठ वर्ग फर्माये हैं। तब जम्बू स्वामी ने विनय पूर्वक पूछा, कि 'हे स्वामी ! कृपा कर यह फर्मावें कि प्रथम वर्ग के कितने अध्याय फर्माये हैं ?' तब श्री सुधर्म स्वामी ने फर्माया, कि हे जम्बू ! भगवान् महावीर स्वामी ने प्रथम वर्ग के दस अध्याय फर्माये हैं। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं:–

(१) गौतम (२) समुद्र (३) सागर (४) गम्भीर (५) स्थिमित (६) अचल (७) काम्पिल्य (८) अक्षोभ (९) प्रसेन और (१०) विष्णुकुमार।

मूलः–जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगड़दसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पराणत्ता तं जहा गोयम जाव विराहू। पढ़मस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगड़दसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पराणत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं

समएणं वारवईणामं नयरी होत्था, दुवालस जोयणायामा णवजोयण वित्थिगणा धणवइ मइनिम्माया चामीकरपागारा नाणामणिपंचवगणकविसीसगपरिमंडिया सुरम्मा अलकापुरि संकासा पमुदिय पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया पासादीया दरिसाणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

भावार्थः-हे भगवन्! श्री महावीर स्वामी ने प्रथम वर्ग के गौतम, विष्णु आदि नामवाले, जो ये दस अध्याय फर्माये हैं, इन में से प्रथम अध्ययन में क्या भाव फर्माया? कृपा करके कहिए।

"जम्बू! चौथे आरे में, अरहा अरिष्टनेमि भगवान् के समय म, द्वारिका नामक एक सुन्दर नगरी थी, जिस की लम्बाई बारह योजन और चौड़ाई नौ योजन थी। उस नगरी की रचना कुवेर देव ने की थी। उस का ग्राम-कोट (परकोटा) स्वर्ण का बना हुआ था। और उसके ऊपर पञ्च प्रकार के रत्नों द्वारा जड़ित कङ्गूरे शोभायमान थे। वह द्वारिका नगरी कुवेर की नगरी के समान देदीप्यमान थी। देवलोक के समान दर्शकों के चित्त को आकर्षित करनेवाली तथा परम सुन्दर दर्शनीय नगरी थी। दर्शकों का प्रतिविम्ब उस नगरी में पड़ता था। और, नगरी का प्रतिविम्ब, निकटस्थ जलाशय में। इस लिए वह द्वारिका नगरी वास्तव में अपने नाम 'द्वारिका' को सोलह आना सिद्ध कर रही थी।

मूलः—तीसेणं बारवईणयरीए बाहिया उत्तर पुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था, वराणत्रो। तत्थ णं रेवयए पव्वए नंदणवणे नामं उज्जाणं होत्था, वराणत्रो, सुरप्पिए णामं जक्खायतणे होत्था, पोराणे, से णं एगेणं वणसंडेणं परिक्खित्ते, असोगवर-पायवे। तत्थणं बारवईणयरीए करहे णामं वासुदेवे राया परिवसइ। महया रायवराणत्रो। से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसराहं दसाराणं, बलदेवपामोक्खाणं पंचराहं महावीराणं, पज्जुराणपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं, संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंतसाहस्सीणं, महसेण पामोक्खाणं छप्पराणाए बलवग्गसाहस्सीणं, वीरसेणपामोक्खाणं एगवीसाए वीर साह-स्सीणं उग्गसेणं पामोक्खाणं सोलसराहं राय साहस्सीणं, रुप्पिणिपामोक्खाणं सोलसराहं देवि-साहस्सीणं, अणंगसेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं, अराणेसिं च बहूणं ईसर जाव सत्थवाहाणं बारवईए नयरीए अद्ध भरहस्स य सीमंतयाय समत्थस्स आहेवच्चं जाव विहरइ।

भावार्थः—उस द्वारिका नगरी के ईशान्य कोण की ओर, 'रैवत' नामक एक पर्वत था । और उस पर्वत पर 'नन्दन-वन' नामक एक उपवन । उस उपवन में, 'सुर-प्रिय' नामक एक यक्ष का बड़ा ही प्राचीन स्थान था । उस स्थान के चहुँ ओर एक विशाल वन-खण्ड था । जिसमें अनेक अशोक वृक्षों की अपूर्व छटा लहरा रही थी । उस समय उस द्वारिका नगरी में, श्री वासुदेव 'कृष्ण' राजा राज करते थे । वे तीन खण्ड के सम्राट् थे । वहाँ समुद्र विजय, आदि परस्पर एक दूसरे की समता रखनेवाले दस राजा और भी थे । बलदेवजी, आदि पाँच महावीर पुरुष थे । प्रद्युम्न, आदि साढ़े तीन करोड़ कुमार थे । महासेन, आदि छप्पन हजार साहसिक योद्धा पुरुष थे । वीरसेन, आदि इक्कीस हज़ार वीर पुरुष थे । उग्रसेन, आदि सोलह हजार माण्डलीक राजा थे । रुक्मणि, आदि सोलह हजार कृष्ण महाराज की रानियाँ थीं । नृत्य-कला में प्रवीण अनंगसेना, आदि वेश्याएँ थीं । और भी अनेक धनाढ्य, सेठ, साहूकारादि लोग वहाँ निवास करते थे । ऐसी महान् समृद्धिशाली द्वारिका नगरी में, श्री कृष्ण महाराज अर्द्ध भरत में, वैताढ्य गिरि पर्यन्त, अर्थात् तीन खण्ड में राज करते थे ।

मूलः-तत्थणं बारवईए नयरीए अंधगवराहीणामं राया परिवसइ महया हिमवंत, वण्णओ । तस्सणं अंधगवरिहस्स रण्णोधारिणी नामं देवी होत्था, वण्णओ । तत्तेणं सा-धारिणी देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि एवं जहा महब्बले । सुमिणदं-

सण कहणा, जम्मं वालत्तणं कलाओ य। जोवणपाणि गाहणं, कंता पासाय भोगाय ॥१॥ णवरं गोयमो नामेणं अट्ठगहं रायवर कन्नाणं एग दिवसेणं पाणि गेण्हावेंति अट्ठओ दाओ।

भावार्थः—उस द्वारिका नगरी में, अन्धक-विष्णु नामक एक बड़े जागीरदार राजा राज करते थे। उस राजा के 'धारिणी' नामक एक रानी थी। यह रानी एक दिन शयनागार में सो रही थी। पिछली रात्रि में एक शुभ स्वप्न उसे आया। तदनुसार, पूरे नौ मास और दस दिन बीत जाने पर, एक बालक-रत्न का जन्म उसकी कोंख से हुआ। बालक के जन्म, बाल्य—काल, शिक्षा-प्राप्ति आदि का वर्णन, पाठकवृन्द महाबल की तरह समझ लें। विशेष;केवल इतना ही है, कि उन का नाम गौतम कुमार रक्खा गया। जब वे तरुण हुए, उनका विवाह आठ कन्याओं के साथ कर दिया गया। वधु-पक्ष की ओर से आठ करोड़ का दहेज उन्हें मिला।

मूलः—तेणं कालेणं तेणं समए णं अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे जाव विहरइ, चउव्विहा देवा आगया, कण्हे विणिग्गए। ततेणं तस्स गोयमस्स कुमारस्स जहा मेहे तहा णिग्गए, धम्मं सोच्चा णिसम्मं जं नवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आ पुच्छामी देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वयामि, एवं जहा मेहे जाव अणगारे जाए इरियासमिए जाव इणमेव निग्गंथं पावयणं

पुरओ काओ विहरइ। ततेणं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहा रूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एकारस्स अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाणं भावे माणे विहरइ। तएणं अरिहा अरिट्ठनेमी अण्णया कयाइ बारवईओ नयरीओ नंदणवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमइ त्ता बहिया जणवय विहारं विहरइ।

भावार्थः—उस समय एक बार अरहा अरिष्टनेमि भगवान् ने गाँव-गाँव विचरण करते हुए, द्वारिका के बाग में पदार्पण किया। शहर में सूचना होते ही, वहाँ की जनता भगवान् के दर्शनार्थ बरसाती नदी की भाँति उमड़ पड़ी। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, और वैमानिक देव भी उनके दर्शन को आए। सम्राट् श्री कृष्ण महाराज भी पधारे। गौतम कुमार को सूचना मिलने पर वे भी दर्शनार्थ गये। भगवान् का प्रवचन सुन कर, वहीं उन्हें वैराग्य प्राप्त हो गया। तब वे भगवान् से बोले-"प्रभो! मैं अपने माता-पिता से पूछ कर, आप से दीक्षा ग्रहण करूँगा।" ऐसा कह कर कुमार बड़े ही हर्ष के साथ घर पर आये। माता-पिता से आज्ञा उन्होंने माँगी। माता-पिता ने कुमार को बहुत-कुछ समझाया; परन्तु उन्होंने किसी की भी एक बात न मानी, अन्त में बड़े ही समारोह से, मेघ कुमार की भाँति उनकी भी दीक्षा हो गई। अब कुमार साधु बन कर इर्या समिति, आदि पाँच समिति, तीन गुप्ति, एवं निर्ग्रंथों के प्रवचनों को आगे

रख कर विचरने लगे।

उन गौतम अणगार ने अल्प समय में ही अरहा अरिष्टनेमि भगवान् के स्थविर मुनियों से, सामायिक से लगा कर ग्यारह अंग पर्यंत ज्ञान सम्पादन कर लिया। साथ ही साथ, उपवास से लगा कर, अनेकों भाँति की तपश्चर्या करते हुए, आत्मानन्द में लीन वे रहने लगे। भगवान् अरिष्टनेमि एक दिन उस द्वारिका के 'नन्दनवन' से विहार कर, देश-विदेश के भव्य जीवों को उपदेश देते हुए मुक्ति का पथ उन्हें दिखाने के हेतु, अन्यत्र पधार गये।

मूलः—तते णं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइ जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ २ त्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेत्तए। एवं जहा खंदओ तहा बारस भिक्खुपडिमाओ फासेइ, फासित्ता, गुण रयणं पि तवो कम्मं तहेव फासेइ निरवसेसं, जहा खंदओ तहा चिंतेइ, तहा आपुच्छइ, तहा थेरेहिं सद्धिं सेत्तुजं दुरूहइ, मासियाए संलेहणाए बारस वरिसाइं परियाए जाव सिद्धे।

भावार्थः-एक दिन गौतम अणगार ने भगवान् अरिष्टनेमि के समीप आ कर, उनकी क्रमशः तीन वार प्रदक्षिणा तथा स्तुति की। और विनयपूर्वक वन्दना कर के निवेदन किया-

हे प्रभो ! मेरी इच्छा है, कि "मैं 'मासिक-भिक्षु-पड़िमा-तप' स्वीकार कर, आप की आज्ञा हो, तो विचरण करूँ।" इस पर भगवान् ने उन्हें फर्माया, कि "जिस प्रकार भी तुम्हें सुख हो, वैसा करो।"

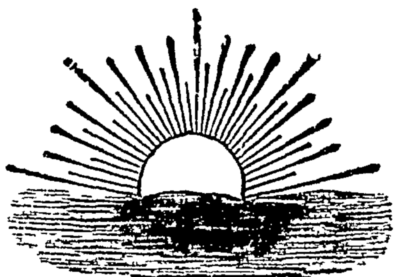
फिर गौतम अणगार ने एक पड़िमा से बारह भिक्षु की पड़िमा पर्यंत, खन्दक मुनि की भाँति घोर तप किया। तत्पश्चात् 'गुणरत्न' नामक तपस्या भी उन्होंने की। जिस प्रकार खन्दकजी ने संथारा किया था, उसी प्रकार ये भी भगवान् से पूछ कर और स्थविर मुनिवरों को साथ ले, शत्रुञ्जय पहाड़ पर गये। और, वहाँ एक मास का संथारा कर, अन्तिम समय में, सर्व कर्मों को नष्ट करते हुए मुक्ति में वे पधार गये।

मूलः-एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगड़दसाणं पढमवग्गस्स पढम अज्झयणस्स अयमट्ठे पगणत्ते। एवं जहा गोयमो तहा सेसा वगिह पिया धारिणी माता समुद्दे, सागरे, गंभीरे, थिमिए, अयले, कंपिल्ले, अक्खोभे, पसेणई विगहुए एए एगगमा। पढमोवग्गो दस अज्झयणा पगणत्ता।

भावार्थः-हे जम्बू ! भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगढ़-सूत्र के प्रथम-वर्ग के प्रथम अध्याय में यही

वर्णन किया है। इसी प्रकार उन्होंने दूसरे अध्याय में समुद्र कुमार का, तीसरे में सागर का, चौथे में गम्भीर का, पाँचवें में स्थिमित का, छठे में अचल का, सातवें में काम्पिल्य का, आठवें में अक्षोभ का, नवें में प्रसेन का, और दशवें में विष्णु का वर्णन किया है। इन सभी की कथा गौतम कुमार की भाँति ही वर्णन की गई है। इन नवों के पिता का नाम 'वह्नि' और माता का नाम 'धारिणी' था।

इति प्रथमो वर्गः।



द्वितीय-वर्ग

मूलः-जइणं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पराणत्ते। दोच्चस्स णं भंते! वग्गस्स अंतगड़दसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पराणत्ता? एवं खलु; जंबु! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठ अज्झयणा पराणत्ता। तं जहा-अक्खोभ, सागरे, खलु समुद्द, हिमवंत, अचल णामे य। धरणेय पूरणे वि य; अभिचंदे चेव अट्ठमए॥१॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवईए णयरीए वरिह पिया धारिणी माया। जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा गुण रयण तवो कम्मं सोलसवासाइ परियाओ सेत्तुंजे मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धे। एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अमट्ठस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पराणत्ते।

भावार्थः-भगवन्! श्री अनन्तगढ़ सूत्र के प्रथम वर्ग में भगवान् महावीर स्वामी ने जो वर्णन किया है, वह आनन्दपूर्वक आप के श्री मुख से मैंने श्रवण किया। लेकिन, दूसरे वर्ग में कितने अध्याय हैं और उनमें किस विषय का प्रातपादन किया गया है, सो कृपा कर के अब फर्मावें।

"हे जम्बू! भगवान् ने दूसरे वर्ग में अक्षोभ, सागर, समुद्र, हिमवन्त, अचल, धरण, पूरण, और अभिचन्द, इन आठ अध्यायों का क्रम-पूर्वक वर्णन किया है। अतः ध्यान पूर्वक श्रवण करो।"

श्री अरहा अरिष्टनेमि भगवान् के समय, 'द्वारिका' में, अन्धक विष्णु नामक एक राजा जागीरदार के रूप में राज करते थे। उनकी धारिणी नामक एक बड़ी ही आज्ञाकारिणी रानी थी। उनके अक्षोभ, सागर, समुद्र, हिमवन्त, अचल, धरण पूरण और अभिचंद ये आठ पुत्र-रत्न थे। इन आठों कूमारों ने भगवान् श्री अरिष्ट नेमि के सदुपदेश से दीक्षा धारण की। और गुण-रत्न संवत्सर तप, आदि अनेक प्रकार की बड़ी ही घोर तपश्चर्या की। इस प्रकार सोलह वर्ष पर्यन्त चारित्र-पालन कर कर्मों को क्षय करते हुए वे भी मुक्ति को प्राप्त हुए। जिस प्रकार श्री गौतम कुमार का वर्णन किया है, उसी प्रकार आठ अध्यायों में इन आठों कुमारों ने भी अपने जीवन को पवित्र किया। इस प्रकार हे जम्बू! भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगढ़ सूत्र के दूसरे वर्ग का वर्णन किया है।

इति द्वितीयो वर्गः

तृताय-वर्ग

मूल:—जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पराणत्ते ! तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पराणत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स अंतगड़दसाणं तेरस अज्झयणा पराणत्ता तं जहा- अणीयसेण, अणंतसेणे, अजियसेण, अणिहयारिउ, देवसेणे, सत्तुसेणे, सारणे, गए, सुमुहे, दुम्मुहे, कूवए, दारुए, अणादिट्ठी। जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स, अंतगड़दसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पराणत्ता तं जहा अणीयसेण जाव अणादिट्ठी। पढ़मस्स णं भंते अज्झयणस्स अंतगड़दसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पराणत्ते।

भावार्थः—हे भगवन् ! श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी ने आठवें अंग के दूसरे वर्ग के आठों अध्यायों में, जिस प्रकार आठ कुमारों की मुक्तावस्था का वर्णन किया है, उसे श्री-मुख से आनन्द पूर्वक मैंने श्रवण कर लिया अब कृपा कर के, तीसरे वर्ग का वर्णन फर्मावें ।

हे जम्बू ! तीसरे वर्ग में, तेरह अध्ययन हैं । उन में अणीयसेन, अनन्तसेन, अजितसेन, अनिहत रिपु, देव-सेन, शत्रु-सेन, सारण, गज-सुकुमार, सुमुख, दुर्मुख, कूपक, दारुक, और अनादृष्टि इन तेरह कुमारों का वर्णन किया गया है ।

भगवन् ! इन तेरह अध्यायों में से अब प्रथम अध्याय का क्या तात्पर्य है, सो कृपा कर के फर्मावें ।

मूलः—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे णामं णयरे होत्था, रिद्धि-थिमिय समिद्धे वण्णओ । तस्स णं भद्दिलपुरस्स नयरस्स बहिया उत्तर पुरात्थिमे दिसीभाए सिरिवणे णामं उज्जाणे होत्था, वण्णओ जियसत्तु राया । तत्थणं भद्दिलपुरे णगरे नागे णामं गाहावई होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए । तस्सणं नागस्स गाहावइस्स सुलसा णामं भारिया होत्था, सुकुमाला जाव सुरूवा । तस्सणं नागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारि-

याए अत्तए अणीयसेणणाम कुमारे होत्था। सुकुमाले जाव सुरुवे पंच धाइ परिविंखत्ते। तं जहा-खीर धाई जहा दढ़पइन्ने जाव गिरीकंदर मल्लीणेव चंपगवरपायवे सुहं सुहेणं परिवड्ढइ।

भावार्थः—हे जम्बू! अरहा अरिष्टनेमि भगवान् के समय, भद्दिलपुर नामक एक नगर अपनी अटूट सम्पत्ति की गुण-गरिमा से सुशोभित था। नगर से कुछ ही दूर पर, ईशान्य दिशा में, अपने नाम को यथार्थ रूप से चरितार्थ करने वाला, समस्त उपवनों की जीवित श्री की भाँति 'श्रीवन' नामक एक अति ही सुन्दर और सुरम्य उद्यान था। उस समय भद्दिलपुर में राजा जित-शत्रु राज करते थे। उसी नगर में 'नाग' नामक एक महान् समृद्धिशाली गाथापति निवास करता था। वह भी अटूट लक्ष्मी का स्वामी था और, उसके 'सुलसा' नामक एक बड़ी ही सुकुमार परम सुन्दरी धर्मपत्नि थी। उस 'नाग' नामक गाथापति के पुत्र अणीयसेन का, पाँच प्रकार की धायों ने दृढ प्रतिज्ञ (दढपइन्ने) की भाँति. आधि व्याधियों से रक्षा करते हुए, जिस प्रकार पर्वत की उन्नत गुफाओं में चम्पक वृक्ष सुरक्षित रह कर हरा-भरा होता है, ठीक उसी प्रकार, उस पुत्र का लालन-पालन किया था।

मूलः—ततेणं तं अणीयसं कुमारं साइरेग अट्ठवासजायं अम्मापियरो कलायरिय जाव भोगसमत्थे जाए यावि होत्था। ततेणं तं अणीयसं कुमारं उम्मुक्क बालभावं जाणेत्ता अम्मापियरो सरिसियाणं सरिसव्वयाणं सरिस लावण्णरूवजोवणगुणोववेयाणं सरिसेहिं तो कुलेहिं

तो अणिल्लियाणं बत्तीसाए इब्भवरकरणगाणं एगादिवसे पाणिं गेराहावेइ ।

भावार्थः-उस अणीयसेन नामक कुमार को आठ वर्ष की अवस्था के पश्चात् एक कलाकोविद के द्वारा योग्य विद्याध्ययन कराया गया। कुमार बहत्तर कलाओं में निष्णात हो गया। यौवनावस्था प्राप्त होने पर माता-पिता ने उसका विवाह, एक बड़े ही श्रेष्ठ कुल के, बत्तीस अर्ब-पति सेठ की, कुमार के समान अवस्था, चतुराई, रूप और गुणों में निपुण, ऐसी बत्तीस कन्याओं के साथ कर दिया।

मूलः-ततेणं से नागे गाहावई अणीयस्स कुमारस्स इमं एयारूवा पीतिदाणं दलयइ तं जहा-बत्तीसं हिरगणकोडीओ जहा महब्बलस्स जाव उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं भोग भोगाइं भुंजमाणे विहरइ । तेणं कालेणं तेणं समए णं अरहा अरिट्ठनेमी जाव समोसढ़े सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं उग्गहं जाव विहरइ, परिस्सा णिग्गया । ततेणं तस्स अणीयसस्स कुमारस्स महया जणसद्दं जहा गोयमे तहा नवरं सामाइयमाइयाइं चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ वीसं वासाइं परियाओ सेसं तहेव जाव सेत्तुंजे पव्वए मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धे । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगड़दसाणं तच्चस्स

वग्गस्स पढ़म अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

भावार्थः—विवाह में, प्रत्येक वधु-पक्ष की ओर से एक-एक करोड़ सोनैये दहेज के रूप में प्राप्त हुए। इसका सविस्तर वर्णन महाबल के चरित से जाना जा सकता है। अणीयसेन कुमार भी विवाह के पश्चात्, अपने विशाल राज-प्रासाद में, अनेक भाँति की अठखेलियाँ करते हुए, मृदङ्ग की ध्वनि से मत्त बन, अपने जीवन को आमोद-प्रमोद में व्यतीत करने लगे। जीवन के इसी स्वच्छन्द समय में, श्री अरहा अरिष्टनेमि प्रभु उस नगरी के 'श्रीवन' नामक एक उद्यान में पधारे। जन संख्या दर्शनों के लिए उमड़ पड़ी, यह दृश्य देख कर, अणीयसेन कुमार भी महाबल की तरह भगवान् के दर्शनार्थ 'श्रीवन' उद्यान में उपस्थित हुए। प्रभु के दर्शन कर, उन्होंने उपदेश श्रवण किया। और, गौतम कुमार की भाँति ही, उन्होंने भी दीक्षा धारण कर ली। स्वल्प काल में ही, सामायिक आदि चौदह पूर्व का ज्ञान सम्पादन उन्होंने किया। बीस वर्ष तक चारित्र-पाल कर, अन्तिम समय में, एक मास का सन्थारा करते हुए उन्होंने भी मोक्ष पद को प्राप्त किया। हे जम्बू! भगवान् ने श्री अन्तगढ़ सूत्र के तीसरे वर्ग के प्रथम अध्याय में यही वर्णन किया है।

मूलः—एव जहा अणीयसे एवं सेसा वि अणंतसेणो अजियसेणो अणिहयरिऊ देवसेणे सत्तुसेणे छ अज्झयणा एकगमा, बत्तीसाओ दाओ, वीसंवासा परियाओ, चोदस पुव्वाइं

अहिज्झंति सेत्तुंजे जाव सिद्धा । छट्ठमज्झयणं समत्तं ।

जइणं भंते ! उक्खेवओ सत्तमस्स । तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए जहा पढमे नवरं वसुदेवे राया, धारिणी देवी सीहो सुमिणे, सारणेकुमारे, पण्णासओ दाओ, चोद्दस्स पुव्वा, वीसंवासा परियाओ, सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे ।

भावार्थः— जम्बू ! जिस प्रकार अणीयसेन कुमार का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार अनन्तसेन, अजितसेन, अनिहत-रिपु, देव-सेन, और शत्रुसेन, आदि पाँचों कुमारों ने भी दीक्षा धारण कर मुक्ति प्राप्त की । ये छहों कुमार भद्दिलपुर के 'नाग' नामक गाथापति के सुपुत्र और परस्पर सहोदर भ्राता थे । इनकी भी धूम धाम से बत्तीस-बत्तीस कन्याओं के साथ शादी हुई थी और, प्रत्येक को बत्तीस-बत्तीस करोड़ का दहेज प्राप्त हुआ था। परन्तु सच्ची लगन के सामने, संसार के सभी बन्धन शिथिल पड़ जाते हैं। सब कुमारों ने दीक्षा ग्रहण की । तथा चौदह वर्ष चारित्र-पालन कर अन्त में एक मास का सन्थारा धारण उन्होंने किया । और मुक्त हो गए । यहाँ तक ये छः अध्याय पूरे हो गये।

हे जम्बू ! चौथे आरे में, 'द्वारिका' नगरी थी। उस में, राजा वसुदेव अपनी रानी धारिणी सहित राज करते थे। एक दिन रानी को सिंह का शुभ स्वप्न दिखाई दिया। और, उस स्वप्न के कुछ ही काल के पश्चात्,

राजा वसुदेव के घर में, राणी धारिणी की कोख से एक पुत्रोत्पत्ति का मङ्गलमय आनन्द छा गया। कुमार का नाम सारण रक्खा गया। कुमार का बाल्यकाल में विद्याध्ययन, और यौवनावस्था में पचास कन्याओं के साथ विवाह कराया गया। वे भी अरहा अरिष्टनेमि भगवान् का सदुपदेश श्रवण कर दीक्षित हुए। चौदह वर्ष के अविरल परिश्रम से उन्होंने चौदह पूर्व का ज्ञानाध्ययन किया। और, बीस वर्ष का चारित्र-पालन कर अन्त में एक मास का सन्थारा ले, वे भी मुक्त हो गये। विशेष वर्णन गौतम कुमार की भाँति ही यहाँ भी समझें।

मूलः—जइणं भंते ! उक्खेओ अट्ठमस्स । एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए जहा पढमे जाव अरहा अरिट्ठनेमी सामी समोसढे। तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतेवासी छ अणगारा भायरो सहोदरा होत्था। सरिसया सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पलगवल गुलियअयसिकुसुमप्पगासा सिरिवच्छं कियवच्छा कुसुमकुंडल भद्दलया नलकुव्वरसमाणा। तएणं ते छ अणगारा जं चेव दिवसं मुंडा भवेत्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ णमंसइत्ता एवं वयासी-इच्छामोणं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं

तवकम्म संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरित्तए। अहा सुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ! तएणं ते छः अणगारा अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरेंती।

भावार्थः-भगवन् ! सातवें अध्याय में भगवान् महावीर स्वामी ने, जो कथन किया है, वह आपने फर्माया और मैंने उसे सुरुचि तथा श्रद्धा के साथ श्रवण किया। किन्तु आठवें अध्याय में जो वर्णन उन्होंने किया है, मेरा मन उसे श्रवण करने के लिए बड़ा ही लालायित है। अतः उसे श्रवण करा के मेरे कान तथा मन की पिपासा को मिटाने की कृपा कीजिए।

हे जम्बू ! उस समय में, 'द्वारिका' नाम की नगरी थी। जिसका वर्णन पहले कर आये हैं। उसी द्वारिका नगरी में, ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए एक दिन श्री अरहा अरिष्टनेमि भगवान् पधारे। उस समय भगवान् के साथ छः शिष्य थे। वे छहों शिष्य परस्पर सहोदर भाई थे। उनका रंग, रुप, तथा अवस्था एक ही सी थी। उनका वर्ण निलोत्पल कमल, भैंस के सींग के अन्दर के भाग, एवं अलसी के फूल के समान सुन्दर था। उनका वक्षःस्थल श्रीवत्स साथिया से सुशोभित था। फूलों के ढेर के समान उनका शरीर कोमल और सुकुमार था। इस प्रकार वे छहों मुनि कुवेर के पुत्र की भाँति सुन्दर शरीरधारी थे। जिस दिन इन छहों सहोदर भाइयों ने दीक्षा धारण की थी,

अर्थात् संसार की मोह-माया को छोड़-छाड़ कर, जिस दिन ये मुनि-पद के अधिकारी बने थे, उसी दिन इन्होंने श्री अरिष्टनेमि भगवान् को वन्दना कर निवेदन किया था कि-' भगवन् ! हमारी ऐसी इच्छा है, कि यदि आप की आज्ञा हो, तो निरन्तर जीवन-पर्यन्त बेले-बेले की तपश्चर्या में अपनी आत्मा को लीन करते हुए विचरण हम करें।' भगवान् ने फर्माया-जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, वैसा ही तुम करो। इसमें विलम्ब तनिक भी न करो। आज्ञा होने पर छहों मुनिराज बेले-बेले की तपश्चर्या कर, आत्मानन्द में रमण करते हुए, विचरण करने लगे।

मूलः-तएणं ते छ अणगारा अण्णया कयाइं छट्ठक्खमण पारणंसि पढमाए पोरिसाए सज्झायं करेइ जहा गोयम सामी जाव इच्छामोणं भंते ! छट्ठक्खमणस्स पारणाए तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवइए नयरिए जाव अडित्तए। अहासुहं देवाणु-प्पिया ! तएणं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठ-नेमिं वंदइ णमंसइ णमंसइ २ त्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियाओ सहस्संववणाओ उज्जा-णाओ पडिणिक्खमांति पडिनिक्खमित्ता तिहिं संघाडएहिं अतुरियं जाव अडंति।

भावार्थः-उसके पश्चात्, वे छहों अणगार, एक दिन, बेले के पारणे में, प्रथम प्रहर के समय स्वाध्याय कर, गौतम



स्वामी की तरह, भगवान् के निकट आ कर बोले-"भगवन्! यदि आपकी आज्ञा हो, तो बेले के पारणे के लिए हम छहों मुनि तीन सिंहाडों (तीन भागों) में बँट कर द्वारिका में गोचरी के लिए जावें।" भगवान् ने शीघ्र ही आज्ञा प्रदान की, कि जैसा भी तुम्हें सुखकर जान पड़ता हो, करो। इस प्रकार छहों अणगारों ने भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर, उन्हें वन्दना की। फिर सहस्राम्र वन से निकल कर तीनों विभागों ने विधि-युक्त शनैःशनैः द्वारिका की तरफ भिक्षार्थ प्रस्थान किया।

मूलः—तत्थणं एगे संघाडए बारवईए णयरीए उच्चनीय मज्झमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गेहे अणुपविट्ठे। तएणं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइत्ता हट्ठ तुट्ठ जाव हियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ २ त्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ णमंसइ २ त्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता, सीह केसराणं मोयगाणं थालं भरेइ २ त्ता ते अणगारे पडिलाभेइ २ त्ता वंदइ णमंसइ २ त्ता पडिविसज्जेइ।

भावार्थः—उन तीनों सिंहाड़ों (विभागों) में से एक सिंहाड़ा द्वारिका नगरी के धनाढ्य, गरीब और साधारण



स्थितिवाले घरों में, अथवा क्षत्रिय, वैश्य और कृषक कुलों में क्रमशः भिक्षार्थ भ्रमण करते-करते, राजा वसुदेव के राजमहल में, जहाँ देवकी निवास करतीं थीं प्रवेश किया। देवकी महारानी, अणगारों को अपने द्वार की ओर आते हुए देख कर बड़ी ही प्रसन्न हुई। और, अपने आसन से उठ कर, अत्यन्त आदर-पूर्वक स्वागतार्थ सात-आठ कदम अणगारों के सम्मुख गई। तथा, तीन बार उन्हें अपने हाथों से प्रदक्षिणा करते हुए, वन्दना की। फिर जिस ओर भोजन-गृह था, उस ओर मुनियों को लाई। और, सिंह-केसरी-मोदक, जो अनेक पौष्टिक पदार्थों के संयोग से श्री कृष्ण महाराज के कलेवे के लिए तैयार किया हुआ था। और, जिस कृष्ण महाराज प्रतिदिन प्रातःकाल कलेवे में लिया करते थे। उसी मोदक का थाल भर कर, देवकी महारानी ने मुनिराजों को वहराया और आदर वन्दना कर, उन्हें विदा किया।

मूलः—तदाणंतरं च णं दोच्चे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च जाव विसज्जेइ। तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए बारवइए नयरीए उच्चनीए जाव पडिलाभेइ२त्ता एवं वयासी-किण्णं देवाणुप्पिया! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए दुवालसजोयण आयामे पच्चक्खं देवलोग भूयाए समणानिग्गंथा उच्चणीयमज्झमाइं कुलाइं घर समुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति? जन्नं ताइं चेव कुलाइं भत्तपाणाए भुज्जो भुज्जो अणुपवि-

संति ?

भावार्थः—उसी के थोड़ी देर पश्चात्, "दूसरा सिंहाड़ा भी (अर्थात् दो मुनियों का समूह) उसी नगरी में, भिक्षार्थ विचरण करते हुए, देवकी के यहाँ आया । उन्हें भी देवकी ने विधि-पूर्वक वही सिंह-केसरी-मोदक बहरा कर, आनन्द पूर्वक विदा किया । फिर थोड़ी ही देर में, 'तीसरा सिंहाड़ा भी घूमते-घुमाते भिक्षार्थ वहाँ आया । देवकी ने उन्हे भी प्रसन्नता-पूर्वक वही सिंह-केसरी-मोदक वहराया । फिर वे विनय पूर्वक उन से बोलीं—"हे देवानुप्रिय ! जहाँ वासुदेव जैसे महा-प्रतापी राजा राज कर रहे हैं, ऐसी स्वर्ग-जैसी महान् द्वारिका नगरी में, इतने घर होते हुए भी क्या आपको भोजन नहीं मिला ? जिससे आपको यहाँ तीन बार पधारने का कष्ट उठाना पड़ा ।

मूलः—तए णं ते अणगारा देवइं देविं एवं वयासी-णो खलु देवाणुप्पिए ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमी से बारवईए णयरीए जाव देवलोग भूयाए समणा निग्गंथा उच्चणीय जाव अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति,नो चेव णं ताइं ताइं कुलाइं दोच्चं पि तच्चं पि भत्तपाणाए अणुपविसंति । एवं खलु देवानुप्पिए ! अम्हे भद्दिलपुरे नयरे नागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोदरा सरिसया जाव नल कुव्बरसमाणा अरहओ अरिट्ठ-

नेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म संसार भउविग्गा भीया जम्मणमरणाणं मुंडा जाव पव्वइया।

भावार्थः-इतना सुनते ही दोनों मुनियों ने नम्रभाव से कहना प्रारम्भ किया-हे देवानुप्रिये! कृष्ण वासुदेव की स्वर्ग-जैसी द्वारिका नगरी में श्रमण साधुओं को क्षत्रिय, वैश्य और कृषकों के घरों से भिक्षा नहीं मिली। और, इसी हेतु बार-बार मुनियों को यहाँ आना पड़ा, यह बात नहीं है। किन्तु हे देवानुप्रिये! भद्दिलपुर नगर में, नाग नामक गाथापति के पुत्र और उनकी सुलसा नामक भार्या के अङ्गज, हम छहों सहोदर भाई हैं। और, छहों नलकुबेर के समान एकसा सुन्दर दिखाई देते हैं। हम छहों सहोदर भाइयों ने, भगवान् श्री अरिष्टनेमि का उपदेश श्रवण कर, जन्म-मरण, एवं सांसारिक दुखों से भयभीत हो, भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की है।

मूलः-तएणं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदामो नमंसामो इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हामो इच्छामो णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जाव अहासुहं देवाणुप्पिया। तएणं अम्हे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरामो, तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमणपा-

रणयंसि पढ़माए पोरिसिए जाव अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा, तं नो खलु देवाणुप्पिए! ते चेव णं, अम्हे, अम्हे णं अन्ने, देवइं देविं वंदइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगया ।

भावार्थः—हमने जिस दिन दीक्षा धारण की थी, उसी दिन से भगवान की आज्ञा प्राप्त कर, बेले-बेले की तपश्चर्या करने की प्रतीज्ञा ली है। और, उसी के अनुसार, बेले-बेले पारणा कर रहे हैं। आज हमारे छहों के बेले का पारणा है। पहले पहर में स्वाध्याय किया। दूसरे में ध्यान और तीसरे में भगवान् की आज्ञा लेकर क्षत्रिय, वैश्य और कृषकों के यहाँ, भिक्षा के लिये गौतमस्वामी की भाँति भ्रमण करते हुए, तुम्हारे घर पर आये। जो पहले सिंहाड़ा आया था, उस में हम नहीं थे। अर्थात् हम छहों भाई प्रथक्-प्रथक् तीन सिंहाड़ों (विभागों) में विभक्त हो कर, द्वारिका में, गोचरी के लिए निकले थे। हम ही यहाँ बार-बार नहीं आये। यह सुन, देवकी ने उन्हें वन्दना की। तथा, मुनियों ने भी अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया।

मूलः—तए णं तीसे देवईए देवीए अय मेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पन्ने एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं कुमार समणेणं बालत्तणे वागरिया-तुमं णं देवाणुप्पिए! अट्ठ पुत्ते पयाइस्ससि सरिसए जाव नल कुब्बर समाणे, नो चेव णं भरहे वासे अण्णाओ अम्मयाओ

तारिसए पुत्ते पयाइस्संति तं णं मिच्छा इमं पच्चक्खमेव दिस्सति भरहेवासे अरणाओ वि अम्मयाओ खलु एरिसए जाव पुत्ते पयायाओ, तं गच्छामि णं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदामि नमंसामि वंदित्ता नमंसित्ता इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामी ति कट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता कोडुंबिय पुरिसा सदावइ २ त्ता एवं वयासी लहु करणप्पवरं जाव उवट्ठवेंति, जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ ।

भावार्थः–तदनन्तर, श्री देवकी महारानी को इस प्रकार सङ्कल्प-विकल्प उत्पन्न हुए, "कि पोलासपुर नगर में, बाल्यावस्था में ही अइमुत्त नामक अणगार ने मुझे ऐसा कहा था, कि "हे देवानुप्रिये ! तू, नल कुबेर के समान आठ पुत्रों को जन्म देगी। वैसे पुत्रो को भरत क्षेत्र में अन्य कोई भी माता जन्म न दे सकेगी।" किन्तु उनका यह कहना मिथ्या हुआ। क्योंकि, भरत-क्षेत्र में अन्य माताओं ने भी तो ऐसे पुत्रों को जन्म दिया है। जिनको में प्रत्यक्ष देख रही हूँ। मगर साधुओं की वाणी कभी निष्फल नहीं होती, अतः मैं जाऊँ और अरिष्टनेमि भगवान् को वन्दना कर, अपने असमंजस को मिटाऊँ। ऐसा विचार कर, उसने अपने सेवकों को बुलाया और उन्हें एक सुन्दर रथ सजाने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही तुरन्त रथ सहित वे आ प्रस्तुत हुए। तब देवकी ने रथारूढ़ होकर भगवान् की शरण ली। जिस प्रकार देवानन्दा भगवान् महावीर स्वामी की सेवा में उपस्थित हुई थीं, उसी प्रकार

देवकी भी श्री अरिष्टनेमि भगवान् की सेवा में पहुँची और उन्हें वन्दना कर उन की सेवा वह करने लगीं।

मूलः-तए णं अरहा अरिट्ठनेमी देवइं देविं एवं वयासी-से नूणं तव देवई! इमे छ अणगारे पासेत्ता अयमेयारूवं अज्झत्थिए, जाव समुप्पज्जेत्था एवं खलु पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं तं चेव जाव णिग्गसि णिग्गच्छित्ता जेणेव ममं अंतियं हव्वमागया से नूणं देवई देविं! अत्थे समट्ठे? हंता अत्थि। एवं खलु देवाणुप्पिए! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे णयरे णागे णामं गाहावई परिवसइ अड्ढे, तस्स णं णागस्स गाहावइस्स सुलसा णामं भारिया होत्था, सा सुलसा गाहावइणी बालत्तणे चेव निमित्तिएणं वागरिया-एस णं दारिया णिंदू भविस्सइ। तए णं सा सुलसा बालप्पभिति चेव हरिणेगमेसी देव भत्तयायावि होत्था, हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ २ त्ता कल्लाकल्लिं ण्हाया जाव पायच्छित्ता उल्लपडसाडया महरिहं पुप्फच्चणं करेइ २ त्ता जंनुपाय पडिया पणामं करेइ, तओ पच्छा आहारेइ वा नीहारेइ वा वरइ वा।

भावार्थः-तदनन्तर, अरहा अरिष्टनेमि भगवान् ने महारानी देवकी से कहा-हे देवकी! इन एक सरीखे छहों अणगारों को देख कर, तेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ, कि मुझे पोलासपुर नगर में अइमुत्त अणगार ने जो

कहा था, कि " तू ऐसे आठ पुत्रों को जन्म देगी । जिनके समान सामन्त भारत में अन्य कोई भी माता पैदा नहीं कर सकेगी । " आदि- आदि विचारों में तल्लीन होकर, तू इसी विषय का मुझ से स्पष्टीकरण करने के लिए यहाँ आई हुई है । क्या, यह बात सत्य है ? उत्तर में देवकी ने कहा--हाँ प्रभु ! जिस प्रकार आपने फर्माया है, वह सोलह आना सत्य है । मैं इन्हीं विचारों में तल्लीन हो कर आपकी सेवा में अपने असमंजस को मिटाने के लिए उपस्थित हुई हूँ । अब, कृपया, इस का स्पष्टीकरण करने का अनुग्रह करें । भगवान् ने फर्माया, हे देवानुप्रिये ! इस का विवरण यूँ है, तू ध्यान दे कर सुन ।

उस काल, भद्दिलपुर नगर में, नाग नामक एक महान् सम्पत्तिशाली गाथा-पति रहता था । उसके 'सुलसा' नामक एक पत्नी थी । उस सुलसा नामक गाथापत्नी को बाल्यावस्था में ही, किसी ज्योतिषी ने कहा था, कि--तू मृत-वन्ध्या होगी । तब से वह सुलसा बाल्यकाल से ही हरिणगमेसी देव की भक्ति करने लगी थी । हरिणगमेसी देव की प्रतिमा बना कर, वह नित्य-प्रति स्नानादि से निवृत्त हो भीगी साड़ी से ही, उस प्रतिमा के सम्मुख पुष्पों का ढेर करती थी । और फिर वह अपने घुटनों को पृथ्वी पर टेक कर उसे वन्दना करती । तत्पश्चात्, भोजन कर अपने अन्य गृह-कार्यों में संलग्न वह होती थी ।

मूलः--तए णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्ति बहुमाण सुस्सूसाए हरिणेगमेसी देवे

आराहिए यावि होत्था। तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठयाए सुलसं गाहावइणिं तुमं च णं दो वि समउउयाओ करेइ, तए णं तुब्भे दो वि सममेव गब्भे गिण्हह, सममेव गब्भे परिवहह, सममेव दारए पयायह। तए णं सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए पयाइति, तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए अणुकंपणट्ठाए विणिहायमावण्णए दारए करतल संपुडेणं गेण्हइ २ त्ता तव अंतियं साहरइ २त्ता तं समयं च णं तुमं पि णवण्हं मासाणं सुकुमालदारए पसवसी, जे वि य णं देवाणुप्पिए! तवपुत्ता ते वि य तव अंतियाओ करयलसंपुडेणं गेण्हइ २ त्ता सुलसाए गाहावइणीए अंतिए साहरइ तं तव चेव णं देवइ! ए ए पुत्ता णो चेव सुलसाए गाहावइणीए।

भावार्थः—तत्पश्चात्, भक्ति और बहुमान-पूर्वक सेवा सुश्रूषा करने पर, हरिणगमेसी देव, उस सुलसा गाथापती की सेवाओं के वशीभूत हो गया। तब उस हरिणगमेसी देव ने सुलसा गाथापती पर अनुकम्पा दिखला कर, उसे तथा तुझे दोनों को एक ही समय में ऋतुमति की। तुम दोनों ही एक साथ गर्भवती हुई। तुम दोनों के गर्भों की प्रतिपालना भी साथ ही साथ हुई। इतना ही नहीं पुत्रोत्पत्ति भी दोनों के यहाँ साथ ही साथ हुई। परन्तु

सुलसा ने मृतक पुत्र को जन्म दिया । उस मृतक पुत्र को हरिणगमेसी देव ने अपने हाथों में लेकर तेरे पास रख दिया । और, उसी समय, तू ने भी, नौ मास और दस दिन पूर्ण होने पर एक सुकुमार पुत्र को जन्म दिया । उस पुत्र को तेरे पास से उठा कर सुलसा के अधीन कर दिया । इसलिए हे देवकी ! ये पुत्र सचमुच में तेरे ही हैं, सुलसा के नहीं ।

मूलः—तए णं सा देवई देवी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठ जाव हियया अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ वंदइत्ता नमंसइत्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ते छप्पि अणगारा वंदइ णमंसइ वंदइत्ता णमंसइत्ता आगयपण्हुया पप्फुयलोयणा कंचुय पडिक्खित्तया दरिय वलय बाहा धाराहय कलंब पुप्फगं पिव समूससियरोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी २ सुचिरं णिरिक्खइ २ त्ता वंदइ नमंसइ वंदइत्ता नमंसइत्ता जेणेव अरिहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता तमेव धम्मियं दुरुहइ २ त्ता जेणेव बारवइ णयरी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता बारवइं

नयरिं अणुपप्पविसइ २ त्ता जेणेव सए गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तणेव उवागच्छइ २ त्ता धाम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव सए वासघरे जेणेव सए सयाणिज्जे तेणेव उवागच्छइ त्ता सयंसि यसणिज्जंसि निसीयइ ।

भावार्थः—तदनन्तर महारानी देवकी, श्री अर्हन् अरिष्टनेमि भगवान के मुखारविन्द से इस वृत्तान्त को सुन कर बड़ी ही प्रसन्न हुई। और इस बात को हृदय में धारण कर, आनन्द का अनुभव करती हुई, भगवान् को वन्दना की। पश्चात् जहॉ वे छहों अणगार विराजमान् थे, वहाँ उनकी सेवा में वह उपस्थित हुई। वहाँ जा कर, उन्हें वन्दना की। उन को देखते ही महारानी देवकी के स्तनों से दुग्ध की धारा बह चली। आनन्द के मारे, उसकी आखें ऑसुओं से ओत-प्रोत हो गईं। हर्ष से उसकी कंचुकी की कसें टूट पडीं। उसकी भुजाओं के भूषण तथा हाथकी चूडियाँ तङ्ग होने लग गई। जिस प्रकार वर्षा में कदम्ब के पुष्प विकसित हो उठते हैं, उसी प्रकार अपने अङ्गज छहों सुकुमार और परम सुन्दर अणगारों को अवलोकन कर महारानी देवकी का रोम-रोम पुलकित हो उठा। इस प्रकार, देवकी उन छहों अणगारों को प्रेमपूर्वक बहुत देर तक अनिमेष-दृष्टि से निरखती रही। तत्पश्चात्, उन्हें वन्दना कर फिर भगवान् के समीप वह आई। उन्हें भी विधि-पूर्वक वन्दना कर, अपने धार्मिक-रथ पर वह सवार हुई। रथ द्वारिका नगरी में प्रवेश हुआ। राजप्रासाद की तरफ, बाहर की उपस्थान-शाला में वह पहुँचा। देवकी

महारानी रथ से नीचे उतर पड़ी। और अपने निवास-स्थान में वह पहुँच कर, शैया पर बैठी।

मूलः—तए णं तीसे देवतीए देवीए अयं अब्भत्थिए समुप्पण्णे एवं खलु अहं सरिसए जाव नलकुव्वरसमाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणए समुब्भूए, एस वि य णं कण्हे वासुदेवे छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ, तं धण्णाओ णं ताओ अम्माओ जासिं मण्णे णियगकुच्छिसंभूतयाइं थण दुद्ध लुद्धयाइं महुरसमुल्लावयाइं मंमण पजंपियाइं थण मूल कक्खदेसभागं अभिसरमाणा तिं मुद्धयाइं पुणो य कोमल कमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छंगे णिवेसियाइं देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्प-भणिए, अहं णं अधन्ना अपुन्ना अकय पुन्ना एत्तो एक तरमपि न पत्ता ओहय मणसंकप्पा जाव झियायइ।

भावार्थः—तत्पश्चात्, उस देवकी महारानी के मन में इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ, "कि—मैंने नलकुवेर के समान सुन्दर एक सरीखे सात पुत्रों को जन्म दिया है। परन्तु उन में से मैंने एक का भी बालकपन का सुखानुभव नहीं किया। और, यह कृष्ण वासुदेव भी मेरे पास प्रणाम करने के लिए पूरे-पूरे छः छः महीने में आते हैं।

पहले तो उन माताओं का जीवन ही सार्थक है, जिनकी कोख से पुत्र-रत्न प्रसव होते हैं। फिर वे माताएँ और भी अधिक धन्यवाद की पात्र हैं, जो अपने स्तन के दुग्ध में मुग्ध होने वाले, मधुर-भाषी और तुतलाती हुई बोली को बोलने वाले लालों को, अपनी कोमल गोदी में खिलाती रहती हैं। वे माताएँ सचमुच में बड़ी ही भाग्यवती हैं, जो अपने स्तन के मूल से कुक्षि-भाग में, तथा कुक्षि-भाग से बाहुओं में क्रीड़ा करने वाले, अपने दुध-मुहाते हुए आँखों के तारों के, बाल-क्रीडा के सुख का अनुभव करती हैं। और, वे माताएँ सचमुच में साक्षात् देवियाँ हैं, जिन्हें अपने नन्हें-नन्हें लालों को, अपने कोमल करों से उठा कर अपनी गोदी में बिठाने, आलिङ्गन करने, और उनके मुख-चन्द्र को बार-बार देखने का सु-अवसर प्राप्त होता है। ऐसा मैं मानती हूँ। किन्तु मैं अधन्य हूँ। भाग्य-हीना हूँ। मैंने पूर्व-भव में ऐसे पुण्य उपार्जन नहीं किये कि जिससे एक भी बालक का इस प्रकार आनन्द अनुभव मैं कर सकूँ। महारानी देवकी, इस प्रकार के विचारों में तल्लीन होकर मन-मलीन तन-छीन हो गई। और आर्त्तध्यान ध्याती हुई चिन्ता-सागर में डुबकियाँ लगाने लगी।

मूलः—इमं च णं कराहे वासुदेवे राहाए जाव विभूसिए देवतीए देवीए पाय वंदए हव्व-मागच्छइ। तए णं से कराहे वासुदेवे देवइं देविं पासइ २ त्ता देवतीए देवीए पायग्गहणं करेइ २ त्ता देवतीं देवीं एवं वयासी—अन्नयाणं अम्मो! तुब्भे ममं पासेत्ता हट्ठ जाव भवह। किराणं

अम्मो ! अज्ज तुब्भे ओहय जाव झियायह। तए णं सा देवई देवी कण्हं वासुदेवं एवं वया-सी-एवं खलु अहं पुत्ता ! सरिसए जाव समाणे सत्तपुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणे अणुब्भूए, तुमं पि य णं पुत्ता ! ममं छण्हं छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छसि, तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव झियामि।

भावार्थः-इतने ही में श्री कृष्ण वासुदेव स्नानादि से निवृत्त हो, और वस्त्र तथा अलङ्कारों से अलङ्कृत बन, अपनी माता, महारानी देवकी के समीप प्रणाम करने के लिए शीघ्र ही उपस्थित हुए। परन्तु अपनी माता को उन्होंने चिन्तित देखा। प्रणाम करके वे उससे बोले-माता ! और दिन जब मैं आता हूँ, तब तो आप मुझे देखकर बड़ी प्रसन्न हो उठती हैं। परन्तु आज तो अति ही अप्रसन्न और चिन्तित जान पड़ रही हैं। इसका कारण क्या है ? इस पर महारानी देवकी ने कहा-पुत्र ! मैंने एक सरीखे नल-कुबेर के समान सात पुत्रों को जन्म दिया है; परन्तु उन सात पुत्रों में से किसी एक पुत्र की भी बाल क्रीड़ा के सुख का मैंने अनुभव नहीं किया। तुम भी छः छः महीनों में, जब प्रणाम करने आते हो, अपना मुँह दिखा जाते हो। अतः वे माताएँ सचमुच में बड़ी भाग्यवती हैं, जो अपने हृदय-दुलारे बालकों की बाल-क्रीड़ा का आनन्द अनुभव करती हैं। मैं तो इस आनन्द के अनुभव से बिलकुल ही वञ्चित हूँ। मेरे प्यारे लाल ! बस, और कुछ नहीं मैं इसी बात की चिन्ता में रात-दिन उतराते रहती हूँ।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं एवं वयासी मा णं तुब्भे अम्मो ? ओहय जाव झियायह, अहण्णं तहा वत्तिस्सामि जहा णं ममं सहोदरे कणीयसे भाउए भविस्सती त्ति कट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव वग्गूहिं समासासेइ२त्ता तओ पडिनिक्खमइ२त्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जहा अभओ नवरं हरिणेगमिसस्स अट्ठमभत्तं पगेण्हइ जाव अंजलिं कट्टु एवं वयासी-इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सहोदरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं।

भावार्थः—तत्पश्चात्, श्री कृष्ण वासुदेव ने माता देवकी से कहा-हे माता ! अब आप चिन्ता चित्त से निकाल कर दूर फेंकिये। मैं ऐसा साधन करूँगा, जिससे मेरे एक सहोदर लघु भ्राता उत्पन्न होगा। इस प्रकार माता को इच्छित मधुर वचनों से विश्वास और धीरज बँधाते हुए वहाँ से वे चले। और जिस ओर पौषध-शाला थी, वहाँ आकर, जिस प्रकार श्री अभयकुमार ने देवाराधना की थी, उसी प्रकार देवाराधना में तत्पर हो गये। विशेषता केवल इतनी ही थी कि-इन्होंने तेले की तपश्चर्या कर के हरिणगमेषी देव से अपने उभय कर-बद्ध प्रार्थना की, कि-हे देवानुप्रिय ! मेरी यह इच्छा है, कि मेरे एक सहोदर लघु भ्राता का जन्म हो। अतएव मेरी इस इच्छा की पूर्ति आप करें।

मूलः—तए णं से हरिणेगमेसी देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-होहिति णं देवाणुप्पिया

तव देवलोयचुए सहोदरे कणीयसे भाउए, सेणं उम्मुक्क बाल भावे जाव जोवणगमण पत्ते अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं मुंडे जाव पव्वइस्सइ, कण्हं वासुदेवं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वदइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

भावार्थः–इस पर, हरिणगमेसी देव ने श्री कृष्ण वासुदेव को कहा, कि–हे देवानुप्रिय! देवलोक से एक देव आयुष्य-पूर्ण कर तुम्हारे सहोदर लघु भाई अवश्य होगा; पर वह बाल्य अवस्था से मुक्त हो कर प्रारम्भिक यौवन वय मे श्री अर्हन्त अरिष्टनेमि प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण करेगा। इस प्रकार वह देव श्री कृष्ण को दो-तीन बार कह कर जिस ओर से आया था, उसी ओर वापिस चला गया।

मूलः–तए णं से कण्हे वासुदेवे पोसहसालाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव देवइं देविं तेणेव उवागच्छइ २ त्ता देवतिए देवीए पायग्गहणं करेइ २ त्ता एवं वयासी होहिइ णं अम्मो! ममं सहोदरे कणीयसे भाउ त्ति कट्टु देवतीए देवीए इट्ठाहिं जाव आसासइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए। तए णं सा देवई देवी अन्नया कयाइं तंसि तारिसंगसि जाव सीहं सुमिणे पासेत्ता पडिबुद्धा जाव हट्ठ तुट्ठ हियया तं गब्भं सुहं सुहेणं परिवहइ।

भावार्थः-कृष्ण वासुदेव पौषधशाला से चलकर फिर अपनी माता देवकी के निवासस्थान में आये। माता को सप्रेम प्रणाम उन्होंने किया। तब उनके पाँव पकड़कर वे बोले- "माताजी, मेरे एक सहोदर लघु भ्राता अवश्य होगा। इस प्रकार के मधुर वचनों से माताजी को आश्वासन देकर श्री कृष्णजी वापिस अपने भवन की ओर लौट आये। महारानी देवकी ने एक दिन पिछली रात्रि में शैया पर सोते हुए, अर्द्ध निद्रितावस्था में, एक स्वप्न देखा कि एक सिंह आकाश मार्ग से नीचे की ओर उतरता हुआ, उनके मुँह मे प्रवेश कर गया है। सजग होकर, इस स्वप्न को देखने के कारण महारानी का चित्त बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उन ने पतिदेव से इस स्वप्न का फल पूछा। जान पड़ा कि वह अति ही शुभ स्वप्न था। फिर स्वप्न-फल के विशेषज्ञों से भी उसका निर्णय उन ने प्राप्त किया। तब तो बड़ी ही प्रसन्न हुई। फिर उस गर्भ का सुख तथा प्रयत्नपूर्वक प्रतिपालन वह करने लगी।

मूलः-तए णं सा देवई देवी नवण्हं मासाणं जासुमणारत्तबंधुजीवतलक्खरससरसपारिजातकतरुणदिवाकर समप्पभं सव्वनयणकंतं सुकुमालं जाव सुरूवं गयतालुयसमाणं दारयं पयाया, जम्मणं जहा मेह कुमारे जाव जम्हा णं अम्हं इमे दारए गयतालुसमाणे तं होउ णं अम्ह एयस्स दारस्स नाम धेज्जे गय सुकुमाले गयसुकमाले। तएणं तस्स दारगस्स अम्मा

पियरे नामं करेइ गयसुकुमाले त्ति सेसं जहा मेहे जाव अलंभोगसमत्थे जाए यावि होत्था । तत्थणं वारवईएनयरीए सोमिले नामं माहणे परिवसइ अड्ढे रिउव्वेय जाव सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था । तस्स सोमिलमाहणस्स सोमसिरी नामं माहणी होत्था सुकुमाला । तस्सणं सोमिलस्स माहणस्स धूया सोमसिरीए माहणीए अत्तया सोमा नामं दारिया होत्था सुकुमाला जाव सुरूवा रूवेणं जाव लावण्णेणं उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरायावि होत्था ।

भावार्थः—तदनन्तर, उस महारानी देवकी ने, गर्भस्राव का समय पूर्ण होने पर जूही, विकसित पारिजात के पुष्प बन्धुजीव (बधूटी), उदय होते हुए सूर्य की प्रभा और गज के तालुवे के समान आरक्त दर्शकों के नेत्रों को मोहित करनेवाले बड़े ही कोमल और सुन्दर रूप वाले पुत्र-रत्न को जन्म दिया । इनका जन्मोत्सव मेघ कुमार के सदृश किया गया । अशुचि से निवृत्त हो कर वारहवें दिन नामकरण-सस्कार उनका मनाया गया । इनका कोमल पन, हाथी के तालुवे के समान होने के कारण, इनका नाम भी ' गजसुकुमार ' रक्खा गया । इनकी बाल्यावस्था का अवशेष वर्णन मेघ कुमार की भाँति ही समझना चाहिए । ये ' गज-सुकुमार ' नामक कुमार पढ़ लिख कर शिक्षित हुए । अब बाल्यावस्था से मुक्त हो कर प्रारम्भिक यौवन की घाटी में ये उतरे । उधर द्वारिका नगरी में 'सोमिल ' नामक एक ब्राह्मण रहता था । वह सम्पत्तिशाली और ऋग्वेद आदि चारों वेदों का पूर्ण ज्ञाता था । उसके

सोम-श्री नाम की एक बड़ी ही सुकुमार धर्म पत्नी थी। उस सोमिल ब्राह्मण के 'सोमा' नाम की एक अति ही सुन्दर और रूप लावण्यवती एक बालिका थी।

मूलः—तए णं सा सोमा दारिया अरणया कयाइ रहाया जाव विभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता रायमग्गंसि कणग तिंदूसएणं कीलमाणी२चिट्ठति। तेणं कालेणं तेणं समए णं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे परिसा निग्गया, तए णं से करहे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे रहाए जाव विभूसिए गय सुकुमाले णं कुमारेणं सद्धिं हत्थिखंधवरगए सकोरंट मल्लदामेणं छत्तेणं धरेज्जमाणे णं सेयवर चामराहिं उध्धुव्वमाणीहिं बारवईए नयरीए मज्झं मज्झेणं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स पायवंदए णिग्गच्छमाणे सोमं दारियं पासइ २ त्ता सोमाए दारियाए रूवेण य जोव्वणे य जाव विम्हिए।

भावार्थः—वह लड़की एक रोज स्नान मज्जन कर यावत् वस्त्रालङ्कारों से सुसज्जित हो, और अनेक दास-दासियों को साथ ले अपने घर से निकली। चली-चली वह जिधर राजमार्ग था उधर आ निकली। और, राजमार्ग में अपनी

स्वर्ण तारों से जडित गेंद को वह उछालने लगी। उस समय, अरहा अरिष्टनेमि भगवान् वहाँ पधारे। शहर में यह खबर होते ही दर्शनों के लिए जनता दौड़-पडी। कृष्ण महाराज ने भी भगवान् के पदार्पण के सुसमाचार सुने। तब तो स्नान मज्जनादि से शीघ्र ही निवृत्त हो और वस्त्राभूषणों से सुसज्जित बन, अपने लघु भ्राता गजसुकुमार को साथ उन्होंने लिया। फिर गजारूढ़ हो, कोरंट(कनेर)नामक वृक्ष के फूलों के हारों से वेष्टित छत्र को धारण किये हुए द्वारिका नगरी के मध्य के सार्वजनिक मार्गों से भगवान् अरिष्टनेमि के चरण-वन्दन को प्रस्थान उन्होंने किया। उस समय उन दोनों भाइयों की शोभा बड़ी ही अभिराम थी। बीच-बीच में श्वेत चाँवर, जो उन पर डुलाये जा रहे थे, वे तो उनकी उस शोभा को और भी बढ़ाये देते थे। मार्ग में गेंद खेलती हुई वह 'सोमा' नामक कन्या उन्हें दिख पड़ी। वे उस ब्राह्मण की कन्या का अनुपम रूप-लावण्य देखकर विस्मय, अधीरता और लोक-लज्जा की तरल तरङ्गायमान त्रिवेणी में उतराने लगे।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सोमिलं माहणं जायित्ता सोमं दारियं गेण्हह गेण्हित्ता कन्नंतेउरंसि पक्खिवह, तए णं एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सइ। तए णं कोडुंबिय पुरिसा जाव पक्खिवंति तएणं कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति तएणं से कण्हे वासुदेवे बारवतीए

नयरीए मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ २ त्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जाव पज्जुवासइ। तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स गय सुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहाए कण्हे पडिगए।

भावार्थः-तत्पश्चात्, श्री कृष्ण वासुदेव ने अपने एक अधिकार सम्पन्न सेवक से कहा-हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और सोमिल ब्राह्मण से इस कुमारी को माँग कर, इसे अविवाहित कन्याओं के अन्तःपुर में रख दो। क्योंकि इस कन्या के साथ कुमार 'गजसुकुमार' का विवाह किया जायगा। वह सेवक श्री कृष्ण की आज्ञा पाते ही सोमिल ब्राह्मण के घर पहुँचा। और सोमिल से उसने कहा-त्रि-खण्ड के स्वामी, श्री कृष्ण ने अपने लघु भ्राता गजसुकुमार का विवाह तुम्हारी कन्या 'सोमा' के साथ करना निश्चय किया है। और, इसी लिए उन्होंने तुम्हारी कन्या को माँगा है। सोमिल यह बात सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला-अहो मेरी कन्या और राजकुमार गजसुकुमार के साथ उसका विवाह? यह तो बड़े ही सौभाग्य की बात है। लीजिए, इस लड़की को लेजाइए*। लड़की को ले जाकर अन्तःपुर में रख दिया गया। उधर श्री कृष्ण वासुदेव की सवारी 'सहस्राम्रवन'

* उस समय तीनों वर्णों में परस्पर कन्याओं का आदान-प्रदान हुआ करता था। परन्तु आगे चल कर, यह प्रथा महाराज विक्रमादित्य के समय में बन्द हो गई।

नमक उद्यान में भगवान् के निकट पहुँची । वहाँ श्री कृष्ण आदि ने भगवान् को श्रद्धा, सेवा तथा भक्ति के साथ वन्दना की । भगवान् ने श्री कृष्ण वासुदेव और गजसुकुमार को धर्मोपदेश दिया । फिर कृष्ण महाराज तो भगवान् का उपदेश श्रवण कर द्वारिका की ओर लौट आये ।

मूलः—तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं धम्मं सोच्चा जं नवरं अम्मा पियरं आपुच्छामि जहा मेहो णवरं महलियावज्जं जाव वड्ढिय कुले । तए णं से कण्हे वासुदेवे इमी से कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव गयसुकुमाले कुमारे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता गयसुकुमालं कुमारं आलिंगइ २ त्ता उच्छंगे निवेसेइ २त्ता एवं वयासी तुमं ममं सहोदरे कणीयसे भाया तं मा णं देवाणुप्पिया ! इयाणिं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे जाव पव्वयाहि । अहण्णे बारवतीए नयरीए महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिस्सामि । तएणं से गय सुकुमाले कुमारे कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठति ।

भावार्थः—परन्तु उन गजसुकुमार को श्री अरहा अरिट्ठनेमि प्रभु की वाणी सुन कर, वैराग्य उत्पन्न हो गया । उन्होंने श्री मेघकुमार की तरह भगवान् से कहा—भगवन् ! मैं माता-पिता से पूछ कर, अर्थात् उनकी आज्ञा प्राप्त कर



आपके पास दीक्षा धारण करूँगा। इतना कह कर वे अपने घर आये। माता-पिता से दीक्षा धारण करने की आज्ञा उन्होंने माँगी। माता-पिता ने कुमार को अनेक प्रकार के सांसारिक प्रलोभन दिये। दीक्षा न लेने की अनेकों बातें कहीं। अन्त मे कुमार से उन्होंने कहा-तुम्हारा विवाह हो जाने पर, तुम यदि चाहो तो अपनी सन्तति को अपना कार्य भार सौंप कर, दीक्षित हो सकोगे। श्री कृष्ण ने भी इस संवाद को सुना। वे शीघ्र ही कुमार गजसुकुमार के पास आये। उन्हें कण्ठ से लगा लिये। अपनी गोद में उन्हें बिठाये। तब प्रेम-पूर्वक उनसे वे यूँ बोले-गजसुकुमार! तुम मेरे परम प्रिय लघु भ्राता हो। हे देवानुप्रिय! तुम मेरा कहा अभी मानो। अभी-अभी भगवान् के पास दीक्षा मत लो। मैं आज ही इस द्वारिका नगरी में, बड़े ही समारोह के साथ, तुम्हारा राज्याभिषेक कर-दूँगा। कदाचित, पाठक समझते होंगे, कि राज्याभिषेक की बात को सुन कर, गजसुकुमार कुमार का मन अपने निश्चय से विचलित हो गया होगा। सो नहीं। कुमार ने इस से दूसरा ही कुछ अर्थ लिया। उन्होंने समझा, अभी तो दीक्षा-धारण की केवल चर्चा ही हो रही है। इतने पर ही जब त्रि-खण्ड का एक-छत्र अधिष्ठाता मैं बनाया जा रहा हूँ, तब दीक्षा-धारण करने पर तो इसका अनुपात कितना बढ़ जावेगा अभी किसी भी प्रकार आँका नहीं जा सकता। यह सोच-समझ कर, वे अपने सत्य-पथ पर, हिमालय के समान अटल और समुद्र के समान गम्भीर बने रहे। और, श्री कृष्ण के कथन के उत्तर में केवल मौनावलम्बन उन्होंने धारण कर लिया।

मूल:-तए णं से गयसुकुमाले कुमारे कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो य दोच्चंपि तच्चंपि एवं



वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! माणुस्सया कामा खेलासवा जाव विप्पजहियव्वा भविस्संति, तं इच्छामिणं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाये समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए जाव पव्वत्तए । तए णं तं गयसुकुमालं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे नो संचाएंति बहुयाहिं अणुलोमाहिं जाव आघवित्तए ताहे अकामाइं चेव एवं वयासी तं इच्छामो णं ते जाया ! एग दिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए, निक्खमणं जहा महावलस्स जाव तमाणाए तहा जाव संजमित्तए, से गयसुकुमाले अणगारे जाए इरियासमिए जाव गुत्त वंभयारी ।

भावार्थः—जब माता-पिता ने तथा श्री कृष्णजी ने गजसुकुमार को दो तीन वार राज्याभिषेक की वात कही, तब गजसुकुमार वोले—माताजी पिताजी, एवं देवानुप्रिय ज्येष्ठ वन्धुवर ! मानव-जीवन सम्वन्धी काम-भोग, गिरते हुए श्लेष्म के समान, अर्थात् किम्पाक फल के समान हैं । किम्पाक फल रङ्ग-रूप और स्वाद में जितना ही अच्छा होता है, उतना ही विष से परिपूर्ण भी वह होता है, अतः विषय सुख हलाहल विष के तुल्य त्याज्य हैं । मेरी तो तब यही हार्दिक इच्छा है, कि आप की आज्ञा होने पर मैं दीक्षा ग्रहण कर लूँ । इस प्रकार के सुदृढ़ निश्चय को देख कर, माता-पिता गजसुकुमार के भावों में रंच-मात्र भी परिवर्तन न कर सके । माता-पिता वन्धु-वान्धवों द्वारा

संयम की कठिनता और संसार के सुखों का दिग्दर्शन बार-बार करा देने पर भी, उनके भाव ज्यों के त्यों स्थिर रहे। वे एक इञ्च-भर भी इधर-उधर न हुए। तब माता-पिता ने कहा-पुत्र ! और नहीं तो राज्य घराने में जन्म होने के नाते ही केवल एक दिन ही तू राज्य कर ले। बस, हमारी केवल इतनी ही बात को तो तू अवश्य मान ही ले। गजसुकुमार मौनस्थ रहे। तदनन्तर-माता-पिता ने बड़े समारोह-पूर्वक गजसुकुमार का राज्याभिषेक कर पुत्र से पूछा-क्या आज्ञा है। पुत्र ने कहा-मुझे दीक्षा दिलाओ। बस, फिर क्या था, माता-पिता ने बड़े समारोह से कुमार गजसुकुमार को श्री अरहा अरिष्टनेमि भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण करवा दी। अब गजसुकुमार अणगार बन गये। पाँच समिति तीन गुप्ति और नौ बाड़सहित ब्रह्मचर्य-व्रतधारी बन गये। 'जयं चरे जयं चिट्ठे' आदि प्रभु के उपदेशानुसार अपनी प्रवृत्ति को उन्होंने कर लिया। और इस नाते वे अब अपनी बपौती के त्रिखण्ड के राज्य के बदले, आत्म-साम्राज्य के अधिकारी बन गये।

मूलः-तए णं से गयसुकुमाले अणगारे जं चेव दिवसं पव्वतिए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्हकाल समयंसि जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ २ त्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जिताणं विहरेत्तए अहा-

सुहं देवाणुप्पिया ! तए णं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुन्नाए समाणे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियाओ सहस्संववणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए उवागइत्ता थंडिल्लं पडिलेहेइ २ त्ता उच्चारपासवण भूमिं पडिलेहेइ २ त्ता ईसिं पब्भारगएणं काएणं जाव दो वि पाए साहट्टु एगराइं महा पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

भावार्थः—तत्पश्चात्, गजसुकुमार अणगार ने, जिस दिन दीक्षा ग्रहण की उसी दिन मध्याह्न में, जहाँ अरिष्टनेमि भगवान् विराजमान् थे, वहाँ आकर उन्हें वन्दना की और विनम्रता-पूर्वक निवेदन किया, कि 'भगवन् ! आप की आज्ञा होने पर, मेरी ऐसी इच्छा है, कि मैं इस द्वारिका नगरी के सब से बड़े 'महाकाल' नामक स्मशान में एक रात्रि की महाप्रतिज्ञा धारण कर विचरूँ । अर्थात् एक सम्पूर्ण रात्रि-भर वहाँ ध्यानस्थ हो कर खड़ा रहूँ । भगवान् ने फर्माया—'हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, उस प्रकार करो ।' इस प्रकार भगवान् की आज्ञा पाते ही, भगवान् को वन्दना उन्होंने की । और चले-चले, सहस्राम्रवन उद्यान से निकल कर 'महाकाल' नामक स्मशान में वे आये । वहाँ आकर ध्यान धारण करने के स्थान को उन्होंने देखा । उन्होंने छान-बीन की, कि वह स्थान,

कहीं चीटिएँ, कीड़े, मकोड़े, आदि जीव-जन्तुओं की विराधना होने का स्थान तो नहीं है। फिर बड़ी नीत, लघुनीत (टट्टी, पेशाब) के स्थान को उन्होंने देखा। तत्पश्चात्, खड़े हो मस्तक को कुछ झुका कर, दोनों हाथ घुटने की तरफ लम्बे उन्होंने किये। और, नेत्रों को अनिमेष रखते हुए, एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर की। तब दोनों पैर पास-पास रख कर, अविचल ध्यान निमग्न वे हो गये।

मूलः—इमं च णं सोमिले महाणे सामिधेयस्स अट्ठाए बारवतीओ नयरीओ बहिया पुव्वणिग्गए समिहा ओ य दब्भे य कुसे य पत्तामोडं च गेराहइ २ त्ता ततो पडिनियत्तइ २ त्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूर सामंतेण वीईवयमाणे २ संज्झाकालसमयंसि पविरल-मणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ २ त्ता तं वेरं सरइ २ त्ता आसुरुत्ते एवं वयासी एस णं भो से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थिय जाव परिवज्जिए जे णं मम धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपइयं कालवत्तीणिं विप्पजहेत्ता मुंडे जाव पव्वातिए।

भावार्थः-इसी समय, वह सोमिल ब्राह्मण, उसी महाकाल स्मशान के पास होकर निकला। वह गजसुकमार के दीक्षा लेने के पहले ही, द्वारिका नगरी के बाहर, दर्भ, कुश, पत्ते, मौर आदि सामग्री, यज्ञ के लिए लेने को

गया हुआ था। लौटते समय वह वहाँ आ निकला। उस सन्ध्या काल के समय में, मनुष्यों का आवागमन उधर कुछ कम हो गया था। गजसुकुमार मुनि को देख कर, सोमिल को पूर्वकृत वैर-भाव स्मरण हो आया। वह क्रोधित हो कर, कटु सम्बोधन के शब्दों में उनसे बोला—अरे, यह गजसुकुमार कुमार तो मृत्यु को चाहने वाला और लज्जा रहित है। मेरी पत्नी सोम-श्री की अङ्गजा, सोमा नामक मेरी प्राण प्यारी पुत्री को, जो त्याज्यादि दोषों से रहित तथा अबहिष्कृत यौवनावस्था में है, अकारण ही छोड़ कर यह साधु बन गया है।

मूलः—तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए एवं संपेहेइ२त्ता दिसापडिलेहणं करेइ २ त्ता सरसं मट्टियं गेराहइ २ त्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ २त्ता गजसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ २ त्ता जलंतीओ चिययाओ फुल्लिय किंसुय समाणे खयरंगारे कहल्लेणं गेराहइ २ त्ता गयसुकुमालस्स अण-गारस्स मत्थए पक्खिवइ २ त्ता भीए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ २ त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

भावार्थः—अतएव, आज मैं 'गजसुकुमार' कुमार को अपने वैर का बदला पाई-पाई चुका देना ही श्रेष्ठ सम-

झता हूँ। ऐसा विचार कर इधर-उधर उसने देखा और जलाशय के स्थान से गीली मिट्टी लाकर गजसुकुमार की ओर वह आया। उनके सिर पर उस गीली मिट्टी की एक पाल उसने बाँधी। तब जलती हुई चिता में से, ज्वाज्वल्यमान, टेसू के पुष्प के समान लाल सुर्ख, खैर की लकड़ी के धधकते हुए अंगारों को, मिट्टी के एक फूटे बर्तन में भर कर गजसुकुमार के माथे पर उसने उँडेल दिया। तत्पश्चात् वह सोमिल, भयभीत हो कर, वहाँ से, शीघ्र ही जिधर से आया था, उधर ही को चला गया।

मूलः—तए णं से गजसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुरहियासा। तए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं जाव अहियासेइ। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुपविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे तओ पच्छा सिद्धे जावप्पहीणे। तत्थ णं अहा संनिहितेहिं देवेहिं सम्मं आराहितं ति कट्टु दिव्वे सुरभि गंधोदए वुट्ठे दसद्धवन्ने कुसुमे निवाडिए, चेलुक्खेवे कए दिव्वे य गीयगंध-

ध्वनिनाए कए यावि होत्था ।

भावार्थः-तत्पश्चात्, उन गजसुकुमार अणगार के शरीर में महा भयङ्कर एवं असह्य वेदना हुई । पर उन्होंने सोमिल ब्राह्मण के विषय में अपने हृदय में ज़रा भी बुरे भाव न लाते हुए, उस वेदना को,हँसते-हँसते समभावों से सहन कर लिया । तब शुभ परिणाम एवं प्रशस्त अध्यवसायों से ज्ञान को रोकने वाले कर्मों का क्षय हुआ । कर्मों के क्षय हो जाने, तथा अपूर्व करण में प्रवेश होने पर अनन्त पदार्थ, जिससे जाने जायँ, ऐसा प्रधान केवलज्ञान, केवल दर्शन उन्हें उत्पन्न हुआ । और वे गजसुकुमार अणगार कुछ ही समय के पश्चात, सिद्धत्व को प्राप्त हो गये। उन्हों ने अपने सम्पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक दुखों का सदा के लिए अन्त कर डाला। और,मोक्ष में जा विराजे। मोक्ष प्राप्त होने पर. समीपस्थ देवों द्वारा, दिव्य सुगन्धित जल की वृष्टि, पाँच वर्ण के फूल,तथा सुन्दर दिव्य वस्त्रों की वर्षा, आकाश से उन के शव पर हुई । देवगण प्रधान गीत एवं गन्धर्व-निनाद, अर्थात् मृदङ्गों के शब्दों का घोर नाद करने लगे ।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभायाए जाव जलंते रहाए जाव विभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरंट मल्लदामेणं छत्तेणं धरेज्जमाणेणं सेयवर चामराहिं उद्धुप्पमाणीहिं महया भडचडगरपहकर वंदपरिक्खित्ते वारवइं णयरिं मज्भं मज्भेणं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी

तेणेव पहारेत्थगमणाए । तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिगच्छ-माणे एकं पुरिसं पासइ जुण्णं जरा जज्जरिय देहं जाव किलंतं महइमहालयाओ इट्टगरासी-ओ एगमेगं इट्टगं गहाय बहियारत्थापहाओ अंतो गिहं अणुप्पविसमाणं पासइ २त्ता तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिस्स अणुकंपणट्ठाए हत्थिखंधवरगए चेव एगं इट्टगं गेण्हइ २ त्ता बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेसइ तएणं कण्हेणं वासुदेवेणं एगाए इट्टगाए गहि-याए समाणीए अणेगेहिं पुरिससएहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतो-घरंसि अणुप्पवेसिए ।

भावार्थः-दूसरे दिन, प्रभात में सूर्योदय होने पर, श्री कृष्ण वासुदेव ने स्नानादि कर वस्त्रालङ्कार पहने । और फिर हाथी पर सवार वे हुए । उनके ऊपर उस समय, कोरंट नामक वृक्ष के पुष्पों से वेष्टित छत्र सुशोभित था। दाहिनी और बाईं ओर श्वेत चँवर ढुलाये जा रहे थे । वे अनेक सुभटों सहित द्वारिका नगरी के मध्य में सार्वजनिक मार्गों से होते हुए, जिस ओर श्री अरहा अरिष्टनेमि भगवान् विराज रहे थे, उधर प्रस्थान कर रहे थे ।

मार्ग में, प्रस्थान करते हुए, श्री कृष्ण ने एक अति ही वृद्ध, जीर्ण-शीर्ण तथा जर्जरित तन वाले मनुष्य को

५४

देखा। जो उस समय एक बहुत भारी ईंटों के ढेर में से, एक-एक ईंट उठा कर, बड़ा कष्ट पाता हुआ बाहर से घर के भीतर रख रहा था। यह दृश्य देख कर श्री कृष्ण के मन में विचार उत्पन्न हुआ, कि-यह बेचारा वृद्ध, इस प्रकार कष्ट पाते हुए इस विशाल ईंट के ढेर को एक-एक ईंट कर के, कब तक घर में रख पायगा। ऐसा विचार उत्पन्न होते ही उन्हें उस वृद्ध पुरुष पर दया आई और हाथी पर बैठे-बैठे ही उन्होंने उस विशाल ईंटों के ढेर में से, एक ईंट उठा कर उसी मकान के पिछले हिस्से में जहाँ बाड़ा था, रख दी। अपने स्वामी श्री कृष्ण को इस प्रकार करते हुए देख कर, उनके साथ के जो सैंकड़ों मनुष्य थे, उन्होंने भी उनका अनुकरण किया। सभी ने एक-एक ईंट उस ढेर में से उठा कर उस बाड़े में रख दी। इस प्रकार, श्री कृष्ण के एक ईंट उठाने पर, उस बेचारे वृद्ध मनुष्य के बार-बार चक्कर काटने का सारा कष्ट बात की बात में दूर हो गया।

मूल:—तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरीए मज्झंमज्झे णं णिगच्छइ २ त्ता जे-णेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागए उवागइत्ता जाव वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता गय-सुकुमालं अणगारं अपासमाणे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी कहि णं भंते! से मम सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे? जएणं अहं वंदामि णमंसामि! तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी साहिए णं कण्हा! गयसु-

कुमालेणं अणगारेणं अप्पणो अट्ठे। तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—कहण्णं भंते ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे ?

भावार्थः—तत्पश्चात्, श्री कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्यमार्ग से होते हुए, जहाँ श्री अरहा अरिष्टनेमि भगवान् विराज रहे थे, वहाँ आये और उन्हें वन्दना करने के पश्चात्, अपने लघुभ्राता नव दीक्षित गजसुकुमार मुनि को वन्दना कर ने के लिए इधर-उधर ढूँढने लगे। जब उन्हें उनका कहीं भी पता वहाँ न लगा, तब भगवान् को वन्दना कर के वे बोले—"भगवन् ! वे मेरे छोटे सहोदर भाई, नव-दीक्षित गजसुकुमार अणगार कहाँ हैं ? उन्हें मैं वन्दना करना चाहता हूँ।" भगवान् ने फर्माया, हे कृष्ण ! गजसुकुमार अणगार ने आज अपना अर्थ सिद्ध कर लिया। कृष्ण ने आश्चर्यान्वित हो कर पूछा-भगवन् ! गजसुकुमार अणगार ने एक ही दिन में अपना अर्थ सिद्ध कैसे कर लिया ?

मूलः—तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी एवं खलु कण्हा ! गयसुकुमाले णं अणगारे णं मम कल्लं पुव्वावरण्हकाल समयंसि वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी इच्छामि णं जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं तं गयसुकुमालं अणगारं एगे पुरिसे पासइ २ त्ता आसुरुत्ते जाव सिद्धे। तं एवं खलु कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं

साहिए अप्पणो अट्ठे। तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—केसणं भंते! से पुरिसे अपत्थिय पत्थिए जाव परिवज्जिए? जेणं ममं सहोदरं कणीयसं भायरं गयसुकुमालं अणगारं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए? तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी मा णं कण्हा! तुमं तस्स पुरिसस्स पदोसमावज्जाहि, एवं खलु कण्हा! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिन्ने।

भावार्थः—तत्पश्चात्, श्री अरहा अरिष्टनेमि भगवान् ने श्री कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार फर्माया, कि-हे कृष्ण! कल मध्याह्न को मुझे वन्दना कर, गजसुकुमार अणगार ने अपनी यह इच्छा प्रकट की थी, कि-"मैं भिक्षु की प्रतिज्ञा, अर्थात् एक रात्रि का ध्यान, स्मशान में रह कर करना चाहता हूँ।" मैंने कहा, जिससे भी तुम्हें सुख की प्राप्ति हो, करो। तब वे गजसुकुमार अणगार स्मशान में जा कर ध्यानारूढ़ हो गये। उस समय उन्हें देख कर एक मनुष्य को बड़ा ही क्रोध उन पर आया। क्रोध के आवेश में उसने गीली मिट्टी ला कर गजसुकुमार के सिर पर चहुँ और एक पाल बाँध दी। फिर खैर की अग्नि के सदृश लाल सुर्ख धधकते हुए अङ्गारों को एक फूटे मिट्टी के बर्तन में ले कर, उन के सिर पर उसने उँडेल दिया। जिसमे महा भयङ्कर वेदना उन्हें हुई। उस वेदना को हँसते-हँसते सम भावों से सहन कर के, केवलज्ञान प्राप्त कर, मोक्ष में वे चले गये। इसी लिए हे कृष्ण! मैंने कहा, कि गज-

सुकुमार अणगार ने अपना कार्य सिद्ध कर लिया ।' यह सुन कृष्ण बोले--भगवन् ! मृत्यु को निमन्त्रण देकर बुलानेवाला और लज्जा-हीन ऐसा कौन-सा धृष्ट मनुष्य है, जिसने मेरे सहोदर लघु भाई को अकाल म ही इस प्रकार काल-कवलित कर दिया। भगवान् ने कहा- हे कृष्ण ! उस मनुष्य के ऊपर क्रोध न करो । उसने तो गज-सुकुमार अणगार को अपने पापों को समूल निर्मूल कर देने में, बीसों बिस्वा सहायता पहुँचाई है। फिर ऐसे परम स्नेही पुरुष के साथ क्रोध का वर्ताव करना तो, मानो उपकारी के उपकार को धो बहाना है।

मूलः-कहराणं भंते ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स णं साहिज्जे दिन्ने? तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-से नूणं कण्हा ? ममं तुमं पायवंदए हव्वमागच्छमाणे बारवत्तीए नयरीए एगं पुरिसं पाससि जाव अणुपविसिए । जहाणं कण्हा ! तुमं तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिन्ने, एवमेव कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभवसयसहस्स संचियं कम्मं उदीरेमाणेणं बहुकम्मणिज्जरत्थं साहिज्जे दिन्ने। तए णं से कण्हा वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी-से णं भंते ! पुरिसे मए कहं जाणियव्वे ! तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-जे णं कण्हा ! तुम बार-



वईए नयरीए अणुपविसमाणं पासेत्ता ठियए चेव ठिइ भेएणं कालं करिस्सइ, तएणं तुमं जाणेज्जासि एसणं से पुरिसे!

भावार्थः—भगवन्! उस मनुष्य ने गजसुकुमार को कैसे सहायता दी? उत्तर में भगवान् ने फर्माया—हे कृष्ण! जब तुम मेरे चरणवन्दन के लिए मार्ग में आ रहे थे, तो द्वारिका नगरी में तुमने एक वृद्ध पुरुष को ईंटें रखते हुए देखा था। तुम ने उस पर दया ला कर एक ईंट उठा दी। और उसे भीतर रख दी। जिससे तुम्हारे साथ वाले सभी पुरुषों ने एक-एक ईंट उठा कर रख दी। यों सब ईंटें उसी समय शीघ्र ही अन्दर रखा गई। कृष्ण! जिस प्रकार तुमने उस वृद्ध पुरुष को सहायता दी, ठीक उसी प्रकार, उस पुरुष ने गजसुकुमार अणगार को उनके अपने अनेक शतसहस्र अर्थात् लाखों भवों में सञ्चय किये हुए कर्मों की एकान्त उदीरणा कर सम्पूर्ण कर्मों को नाश करने में बड़ी सहायता दी है। भगवन्! उस मनुष्य को मैं कैसे जान पाऊँगा? भगवान् ने फर्माया—हे कृष्ण! जब तुम यहाँ से लौट कर द्वारिका मे प्रवेश करोगे उस समय तुम को आते हुए देख कर, वह मनुष्य वहीं रुक जायगा और वहीं का वहीं भयभीत होकर मृत्यु को प्राप्त हो जायगा। बस, उसे देख कर तुम जान लेना, कि यह वही मनुष्य है, जिसने मेरे लघु भाई के प्राण हरण किये हैं।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव

आभिसेयं हत्थिरयणं तेणेव उवागच्छइ २ त्ता हत्थिं दुरुहइ २ त्ता जेणेव बारावई णयरी जेणेव सये गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए । तए णं तस्स सोमिलमाहणस्स कल्लं जाव जलंते अयमेवा रूवे अज्झत्थिए ४ समुप्पन्ने-एवं खलु कराहे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं पायवंदए निग्गए तं नायमेयं अरहया विणायमेय अरहया सुयमेयं अरहया सिद्धमेयं अरहया भविस्सइ कराहस्स वासुदेवस्स, तं न नज्जइ णं कराहं वासुदेवे ममं केण वि कुमारेणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, कराहस्स वासुदेवस्स वारवइं नयरिं अणुपविसमाणस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसिं हव्वमागए ।

भावार्थः-तदनन्तर, वे कृष्ण वासुदेव अरहा अरिष्टनेमि भगवान् को वन्दना कर, अपने प्रधान गज रत्न 'अभीषेकीय' हाथी पर बैठ, जिस ओर द्वारिका नगरी में अपने महल थे, उधर आ रहे थे । उधर सूर्योदय होने पर सोमिल ब्राह्मण के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ, कि कृष्ण वासुदेव भगवान् के चरण-वन्दन को गये हैं । और, भगवान् सर्वज्ञ हैं । उनसे कोई बात छिपी हुई नहीं है । वे यह सब घटना कृष्ण वासुदेव को कह देंगे, तो मुझे कृष्ण वासुदेव न मालूम किस मौत से मारेंगे । ऐसा विचार उत्पन्न होने पर, वह सोमिल ब्राह्मण भयभीत होकर अपने घर से निकला और

एक-एक जिधर से कृष्ण वासुदेव आ रहे थे, उनके समक्ष ही, सम्मुख दिशा से शीघ्र आ निकला।

मूल:-तए णं से सोमिले माहणे कण्हं वासुदेवं सहसा पासेत्ता भीए ठिए य चेव ठिइ-भेयं कालं करेइ धरणि तलंसि सव्वगेहिं धसत्ति संनिवडिए। तए णं से कण्हे वासुदेवे सोमिलं महाणं पासइ २ त्ता एवं वयासी-एस णं भो देवाणुप्पिया! से सोमिले माहणे अपत्थिय-पत्थिए जाव परिवज्जिए जेण ममं सहोयरे कनीयसे भायरे गयसुकुमाले अणगारे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए त्ति कट्टु सोमिलं माहणं पाणेहिं कड्ढावेत्ति कड्ढावित्ता तं भूमिं पाणिएणं अब्भोक्खावेइ २ त्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए सयं गिहं अणुपविट्ठे। एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

भावार्थ:-उसके बाद वह सोमिल ब्राह्मण सम्मुख आते हुए श्री कृष्ण वासुदेव को एकाएक देख कर डरा और उसके पाँव वहीं रुक गए। वह स्थितिभेद (आयुष्य-क्षय) के कारण, वहीं का वहीं मृत्यु को प्राप्त हो गया। धड़ाम से वह भूमि पर आ गिरा। भूमि पर पड़े हुए उस सोमिल ब्राह्मण के शव को देख कर, कृष्ण वासुदेव

बोले, कि–यह वही मृत्यु को चाहने-वाला लज्जा-रहित सोमिल ब्राह्मण है, जिसने मेरे सहोदर छोटे भाई गजसुकुमार अणगार को अकाल में ही काल का ग्रास बना डाला है। ऐसा कह कर, उस ब्राह्मण के शव को, शहर के बाहर उन्होंने फिंकवा दिया। और जहाँ उसका शव गिरा था, वहाँ उस भूमि को जल से शुद्ध करवाया। अर्थात्, वहाँ जल का छिड़काव करवा दिया। फिर वहाँ से चल कर, अपने राज-महल में कृष्ण-वासुदेव आये और आनन्द-पूर्वक राज करने लगे।

हे जम्बू ! श्रमण भगवन्त श्री महावीर प्रभु ने, अन्तगड-सूत्र के तृतीय वर्ग के आठवें अध्याय में, यही वर्णन किया है। इस प्रकार, यह आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

मूलः–नवमस्स उ उक्खेओ। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समए णं बारवतीए णयरीए जहा पढ़मए जाव विहरइ। तत्थ णं बारवईए नयरीए बलदेवे नामं राया होत्था, वरणओ। तस्सणं बलदेवस्स रराणो धारिणी नामं देवी होत्था, वराणओ। तए णं सा धारिणी सीहं सुमिणे जहा गोयमे, णवरं सुमुहे णामं कुमारे, पराणासं कराणाओ, पन्नासदाओ, चोंदस पुव्वाइं अहिज्जइ, वीसं वासाइं परियाओ सेसं तं चेव, जाव सेतुंजे

सिद्धे, निक्खेवओ । एवं दुम्मुहे वि कूवदारए वि दोरहेवि बलदेव पिता धारिणी सुया । दारुए वि एवं चेव णवरं वसुदेव पिया धारिणी सुए। एवं अणाधिट्ठी वि वसुदेव पिया धारिणी सुए । एवं खलु जंवू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगड़दसाणं तच्चस्सवग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते !

भावार्थः-श्री जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मस्वामी से निवेदन किया, कि भगवन् ! आठवें अध्याय में, जो वर्णन श्री महावीर स्वामी ने किया है, उसको फर्मा कर आपने मुझ पर महत्कृपा की है। अन कृपा कर के यह फर्मावें कि नौवें अध्याय में, श्री महावीर स्वामी के द्वारा क्या फर्माया गया है ? श्री-सुधर्म स्वामी ने अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहा-हे जम्बू ! सुनो, उसी काल में, एक द्वारिका नगरी थी, जिसका वर्णन पहले कर चुके हैं। उस द्वारिका नगरी में, बलदेव महाराज अपनी प्राप्त जागीरी पर सानन्द आधिपत्य करते हुए, निवास करते थे। उनके धारिणी नामक एक परमाज्ञाकारिणी रानी थी। एक दिन, उसी धारिणी रानी को शैया में सोते हुए, पिछली रात्रि में, सिंह का स्वप्न दृष्टिगोचर हुआ। वह सजग हुई। अपने पतिदेव से स्वप्न का जिक्र किया । सूर्योदय होने पर स्वप्न फल के विशेषज्ञों से, स्वप्न का फलाफल पुछवाया गया। यहाँ भी बालक का जन्म, बाल्यकाल आदि सब गौतम कुमार की भाँति ही समझलें। विशेषता केवल इतनी है, कि उनका नाम 'सुमुखकुमार' रक्खा गया।

यौवनावस्था प्राप्त होने पर पचास कन्याओं के साथ उनका विवाह किया गया। वधु-पक्ष की तरफ से गृह-सम्बन्धी अन्य आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त, दहेज में पचास करोड़ का नक़द धन भी प्राप्त हुआ। कुछ समय के पश्चात्, भगवान् अरहा अरिष्टनेमि लोक कल्याण के हेतु, ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए, वहाँ पधारे। उनका उपदेश श्रवण कर 'सुमुखकुमार' के मन में संसार के प्रति उपराम हो आया। माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर वे दीक्षित हुए। थोड़े ही काल में उन्होंने चौदह-पूर्व का ज्ञानाभ्यास प्राप्त कर लिया। बीस वर्ष पर्यन्त चारित्र-पालन कर अन्तिम समय में, सन्थारा करके, शत्रुञ्जयपर्वत पर उन्होंने मोक्ष को प्राप्त किया। अर्थात् उन्होंने सिद्धत्व को अपने अधीन किया। इसी प्रकार बलदेव राजा के पुत्र और धारिणी के अङ्गज 'दुर्मुखकुमार' और 'कूपदारक कुमार' ने भी दीक्षा धारण कर अन्तिम समय में, सन्थारा कर के, सिद्ध-पद पाया। वसुदेव के पुत्र, तथा धारिणी के अङ्गज 'दारुक कुमार' और अनाधृष्टि कुमार' इन दोनों ने भी इसी तरह दिक्षा धारण की। और, मोक्ष में पदार्पण किया। इस प्रकार हे जम्बू! अन्तगढ़-सूत्र के तृतीय वर्ग के तेरह अध्यायों में भगवान् महावीर प्रभु ने ऐसा ही वर्णन किया है, जो मैंने तुम्हें कह सुनाया है।

❀ इति तृतीयोवर्गः ❀

चतुर्थो-वर्गः

मूलः—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगड़दसाणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पराणत्ते, चउत्थस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगड़दसाणं समणे णं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अंतगड़दसाणं दस अज्झयणा पराणत्ता, तं जहा—जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेणे य वारिसेणेय । पज्जुन्नसंब अनिरुद्धे, सच्चनेमी य दढ़नेमी । जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पराणत्ता, पढ़मस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पराणत्ते ? एवं खलु जंबू तेणं कालेणं तेणं समए णं वारवई णामं णयरी होत्था । जहा पढमे कराहे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ ।

भावार्थः—फिर जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्म स्वामी से निवेदन किया, कि—हे भगवन् ! श्रमण भगवन्त श्री महावीर

प्रभु, जो मुक्ति में पधारे, उन्होंने आठवें अङ्ग श्री अन्तगढ़-सूत्र के तृतीय वर्ग में, जो विषय वर्णन किया है, उसे मैंने आपके श्री मुख से श्रवण कर लिया है। हे भगवन्! अब श्री अन्तगढ़-सूत्र के चौथे वर्ग में भगवान् महावीर स्वामी के द्वारा कौनसा विषय कथन किया गया है, उसे कहने की कृपा करें। जम्बू! लो सुनो। अन्तगढ़-सूत्र के चतुर्थ वर्ग में, भगवान् महावीर स्वामी ने दस अध्याय फर्माये हैं। वे दस अध्याय क्रमवार यों हैं:-(१) जालि, (२) मयालि, (३) उवयालि, (४) पुरुष सेन, (५) वारिसेन, (६) प्रद्युम्न, (७) शाम्ब, (८) आनिरुद्ध, (९) सत्यनेमि और (१०) दृढ-नेमि। इन दसों कुमारों के नाम से दस अध्याय हैं। हे भगवन्! प्रथम अध्याय का क्या मतलब है? जम्बू! उस समय जो द्वारिका नामक एक परम सुन्दर नगरी थी और जिसका वर्णन पहले कर चुके हैं, वहाँ श्री कृष्ण वासुदेव राज करते थे।

मूलः—तत्थ णं बारवतीए णयरीए वसुदेवे राया धारिणी देवी, वराणओ। जहा गोयमो णवरं जालिकुमारे पराणासओ दाओ, बारसंगी सोलसवासा परियाओ,सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे। एवं मयालि उवयालि पुरिस सेणे य वारिसेणेय एवं पज्जुन्ने वि त्ति, णवरं कराहे पिया रुप्पिणी माता। एवं संबे वि नवरं जंबवई माता। एवं आनिरुद्धे वि, णवरं पज्जुन्ने पिया वेदब्भी माया। एवं सच्चनेमी, नवरं समुद्दविजये पिया सिवा माता।

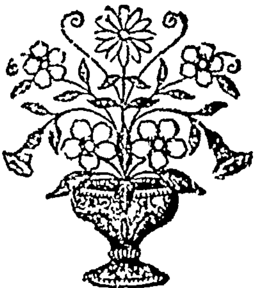
एवं दढ़नेमी वि सव्वे एगगमा। चउत्थस्स वग्गस्स निक्खेवओ।

भावार्थः-उस द्वारिका नगरी में 'वसुदेव' नामक एक राजा, अपने अधीन के ग्रामों पर आधिपत्य रखते
हुए निवास करते थे। उनके धारिणी नामक आज्ञाकारिणी एक रानी थी। स्वप्न के नौ मास व्यतीत होने पर
धारिणी के एक पुत्र-रत्न पैदा हुआ। यौवनावस्था में पचास कन्याओं के साथ उनका विवाह सम्पादन हुआ।
दहेज में भी, पर्याप्त धन अर्थात् पचास करोड़ सौनेयों की रकम उन्हें प्राप्त हुई। किसी दिन भगवान् का उपदेश
श्रवण कर वैराग्य, का वेग इनके हृदय में उमड़ पड़ा। और, उसके परिणाम-स्वरूप, उन्हीं से दीक्षा भी इन्हों ने
ली। बारह अङ्ग-शास्त्रों का साँगोपाँग अध्ययन इन्हों ने किया। सोलह वर्ष पर्यन्त चारित्र पालन कर, अन्तिम
समय में, गौतमकुमार की भाँति, इन्हों ने भी सन्थारा किया। तथा शत्रुञ्जय पर्वत पर निर्वाण-पद को प्राप्त किया।
इसी प्रकार मयालि, उवयालि, पुरुषसेन, वारिसेन और प्रद्युम्न कुमारों का वर्णन भी समझना चाहिए। भेद केवल
इतना ही है, कि इनके पिता का नाम कृष्ण और माता का नाम रुक्मिणी था। इसी तरह शाम्ब कुमार ने भी
दीक्षा धारण की। इनके पिता तथा माता क्रमशः 'कृष्ण' और 'जाम्बवती' थे। 'अनिरुद्ध कुमार' ने भी इसी तरह
दीक्षा धारण की थी। इनके पिता 'प्रद्युम्न' और माता वैदर्भी थीं। 'सत्यनेमि' और दढ़नेमि' इन दोनों कुमारों
के दीक्षा-ग्रहण का विधान इसी प्रकार का था। इनके पिता का नाम 'समुद्र-विजय' और माता का नाम शिवा-

देवी था। इन सभी कुमारों की शिक्षा, दीक्षा आदि का क्रम प्रायः सर्वत्र एक ही सा था।

हे जम्बू! चौथे वर्ग में, यों इन दस अध्यायों का वर्णन किया गया है, जो मैं तुझे सुना चुका हूँ।

❀ इति चतुर्थो वर्गः ❀



पञ्चमो-वर्गः

मूलः—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगड़दसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा-पउमावई य गोरी, गंधारी, लक्खणा सुसीमा य। जंबवई, सच्चभामा, रुप्पिणि, मूलसिरी, मूलदत्ता वि ॥ १ ॥ जइ णं भंते ! समणे णं जाव संपत्ते णं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

भावार्थः हे भगवन् ! अन्तगड़-सूत्र के चौथे वर्ग में भगवान् महावीर स्वामी ने जो वर्णन किया, उसे आपके पवित्र मुखारविन्द से, मैंने अपने कानों के द्वारा सुन लिया। अब कृपा कर यह बताइये, कि पाँचवें वर्ग में, भगवान् ने किस विषय का वर्णन किया है।

जम्बू ! पाँचवें वर्ग में दस अध्याय हैं। वे दस अध्याय इस प्रकार हैं:—(१) पद्मावती, (२) गौरी, (३)

गान्धारी, (४) लक्ष्मणा, (५) सुसीमा, (६) जाम्बवती, (७) सत्यभामा, (८) रुक्मिणी, (९) मूल-श्री और (१०) मूलदत्ता। इन दसों रानियों के ये दस अध्याय हैं।

हे भगवन्! इन दस अध्यायों में से प्रथम अध्याय में किस विषय का वर्णन किया है, वह कृपा कर के आप मुझे समझाइये।

मूलः—एवं खलु जंबू! तेणं काले णं तेणं समएणं बारवई णामं णयरी होत्था, जहा पढ़मे जाव कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ। तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई नामं देवी होत्था वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमि समोसढ़े जाव विहरइ। कण्हे निग्गए जाव पज्जुवासइ। तए णं सा पउमावइ देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठ तुट्ठ जहा देवई जाव पज्जुवासइ। तएणं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावतीए देवीए जाव धम्मकहा परिसा पडिगया तए णं कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—इमीसे णं भंते! बारवत्तीए णयरीए दुवालस्स जोयण आयामा जाव पच्चक्खं देवलोग भूयाए किंमूलाए विणासे भविस्सइ?

कण्हाइ अरहं अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु कण्हा इमीसे वारवतीए णयरीए दुवालस्स जोयणं आयामा नव जोयणं जाव पच्चक्खं देवलोग भूयाए सुरग्गिदीवायण मूलाए विणासे भविस्सइ ।

भावार्थः—हे जम्बू ! इस प्रकार, उस काल में, जो द्वारिका नामक एक परम सुन्दर नगरी थी, वहाँ कृष्ण वासुदेव राजा राज करते थे । इस नगरी और राज्य का विशेष वर्णन पहले हो चुका है । उन कृष्ण वासुदेव के पद्मावती नामक एक परमाज्ञाकारिणी रानी थी । उसी अवधि में किसी एक दिन, श्री अरहा अरिष्टनेमि भगवान् भी विचरते-विचरते वहाँ पधार गये । कृष्ण, श्री अरिष्टनेमि की सेवा में उपस्थित हुए । उधर इनकी रानी श्री पद्मावती को भी प्रभु के आगमन का सु-सम्वाद श्रवण कर बड़ी प्रसन्नता हुई और वह भी प्रभु की सेवा में आ उपस्थित हुई । भगवान् ने श्री कृष्ण वासुदेव, पद्मावती रानी, तथा उपस्थित जनता, आदि को अपनी पीयूष वर्षी वाणी के द्वारा उपदेश प्रदान किया । धर्म-कथा श्रवण कर जनता तो अपने-अपने घरों को लौट गई । परन्तु कृष्ण वासुदेव, भगवान् को वन्दना कर के बोले भगवन् ! नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लम्बी, देवलोक के सदृश इस द्वारिका पुरी का विनाश, किस प्रकार और किस कारण से होगा ? उत्तर में, भगवान् श्री अरिष्टनेमि ने फर्माया, हे कृष्ण ! तुम्हारे कौटुम्बिक कुमारों की हरकतों से रुष्ट हो कर, द्वैपायन ऋषि अग्निकुमार देव बनेंगे । और उन्हीं

के द्वारा तुम्हारी इस बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी, देवलोक के सदृश मनोहर द्वारिका नगरी का विनाश होगा ।

मूलः—तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अयमेव रूवे अज्झत्थिए समुपन्ने धन्नाणं ते जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेण, वारिसेण, पज्जुन्न, संब, अणिरुद्ध, दढ़नेमि, सच्चनेमिप्पभियओ कुमारा जे णं चिच्चा हिरण्णं जाव परिभाएत्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं मुंडा जाव पव्वया अहणं अधन्ने अकयपुण्णे रज्जे य जाव अंतेउरेय माणुस्सएसुय कामभोगेसु मुच्छिए नो संचाएमि अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए। कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—से नूणं कण्हा ! तव अयं अज्झत्थिए समुप्पन्ने—धन्नाणं ते जाली जाव पव्वइत्तए, से नूणं कण्हा अयमट्ठे समट्ठे ? हंता अत्थि ।

भावार्थः—तत्पश्चात्, श्री अरहा अरिष्टनेमि प्रभु के समीप यह अर्थ सुनकर उन श्री कृष्ण वासुदेव को, इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ, कि-जालि, मयालि, पुरुषसेन, वारिसेन, प्रद्युम्न साम्ब, अनिरुद्ध, दढ़नेमि,

सत्यनेमि, आदि कुमारों को धन्य है, जिन्होंने अपनी देव-दुर्लभ सम्पत्ति को छोड़ कर, अरिष्टनेमि प्रभु के शरण में आ दीक्षा धारण की। परन्तु मैं महान् अभागी हूँ। मैंने पूर्ण पुण्योपार्जन नहीं किये। जिससे मैं राज्य और अन्तःपुर तथा मनुष्य-सम्बन्धी काम भोगों में निमग्न हो रहा हूँ। एतदर्थ, क्या मैं समर्थ नहीं हो सकता हूँ, कि श्री अरिष्टनेमि भगवान् की शरण ग्रहण कर मैं भी दीक्षा धारण कर सकूँ? इस प्रकार कृष्ण को चिन्तातुर देख, भगवान् ने उन्हें सम्बोधित कर के कहा-"हे कृष्ण वासुदेव, तुम्हें इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है, कि-जालि, आदि कुमारों को धन्य है। कृष्ण बोले-हाँ, प्रभु! मेरे हृदय में, यह विचार अवश्य उत्पन्न हुआ है।

मूलः-तं नो खलु कण्हा! तं एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जन्नं वासुदेवा चइत्ता हिरन्नं जाव पव्वइस्संति। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-न एवं भूयं वा जाव पव्वइस्संति? कण्हाइ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु कण्हा! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे नियाणकडा, से एएणट्ठेणं कण्हा! एवं वुच्चइ न एयं भूयं जाव पव्वइस्संति।

भावार्थः-हे कृष्ण! वासुदेव अपनी सम्पत्ति को छोड़ दीक्षा अङ्गीकार करलें, ऐसा न तो कभी हुआ ही है; न होता ही है; और न कभी होगा ही। भगवन्! ऐसा क्यों? भगवान् ने इसके उत्तर में कहा, कि हे कृष्ण! सब ही वासुदेव पूर्वभव में नियाणा (निदान) कर लेते हैं। उसी के प्रभाव से, हे कृष्ण! वासुदेव लोग कभी भी

दीक्षा अङ्गीकार नहीं करते हैं।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—अहं णं भंते ! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामि ? तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा ! तुमं बारवईए णयरीए सुरदीवायणकुमार कोव निद्दड्ढाए अम्मा पिइ नियग विप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धिं दाहिणवेयालिं अभिमुहे जोहिट्ठिल्लपामोक्खाणं पंचण्हं पंडवाणं पंडुरायपुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसंबवण काणणे नग्गोह वरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थपच्छाइयसरीरे जरकुमारेणं तिक्खेणं कोदंडविप्पमुक्केणं इसुणा वामे पाये विद्धेसमाणे कालमासे कालंकिच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जालिए नरए नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि।

भावार्थः—तत्पश्चात्, श्री कृष्ण वासुदेव ने, श्री अरहा अरिष्टनेमि प्रभु से इस प्रकार पूछा—भगवन् ! मैं यहाँ से आयुष्य पूर्ण कर के कहाँ जाऊँगा ? तथा कहाँ उत्पन्न हूँगा ? उत्तर में प्रभु ने फर्माया, कि—हे कृष्ण ! एक दिन यह द्वारिका नगरी अग्निकुमार देवताओं में जन्म लिये हुए द्वैपायन ऋषि के कोप से नष्ट हो जायगी। उस

समय, माता पिता और स्वजनों से रहित हो कर, तुम अकेले बलदेवजी के साथ, दक्षिण समुद्र के किनारे पाँडु राजा के पुत्र, युधिष्ठिरादि पाँच पाँडवों के निवास-स्थल पाँडु मथुरा की ओर प्रस्थान करते हुए मार्ग में कौशाम्बी नगरी के निकटस्थ वनखण्ड में, एक विशाल वटवृक्ष के नीचे, पीताम्बर (पीले वस्त्र) से शरीर ढँक कर, पृथ्वी के एक उपल-खण्ड पर बैठोगे। उस समय जरा कुमार के द्वारा चलाया हुआ तीक्ष्ण बाण, तुम्हारे दाहिने पाँव में लगेगा और तुम आयुष्य पूर्ण कर शिला निज धाम पहुँचोगे।

मूलः—तए णं कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म ओहय जाव झियाइ। कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—माणं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहय जाव झियाहिं। एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ अणंतरं उवट्टित्ता इहेव जम्बू दीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए पुंडेसु जणवएसु सय दुवारे बारसमे अममे नामं अरहा भविस्ससि, तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवल परियाणं पाउणेत्ता सिज्झिहिसी।

भावार्थः-तदनन्तर, वे श्री कृष्ण वासुदेव, श्री अरहा अरिष्टनेमि के द्वारा यह बात सुनकर बड़े ही गम्भीर

विचार-सागर में गोते खाने लगे। तब भगवान्, श्री कृष्ण को सम्बोधित कर के बोले-हे कृष्ण ! तुम किसी भी प्रकार का कोई भी विचार मत करो। वहाँ से लौट कर इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में, भविष्य के उत्सर्पिणी समय में 'पुण्ड' देश के अन्तर्गत, 'शतद्वार' नामक नगर में तुम 'अमम' नामक बारहवें तीर्थंकर होगे। वहाँ तुम बहुत वर्षों तक केवलपर्याय पालन कर निज-धाम पहुँचोगे।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठं अप्फोडेइ २ त्ता वग्गइ २ त्ता तिवइं छिंदइ २ त्ता सीहनायं करेइ २ त्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता तमेव अभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुहइ २ त्ता जेणेव बारवइ णयरी जेणेव सए गिहे तणेव उवागए, अभिसेय हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ २त्ता जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणं वरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ २ त्ता कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—

भावार्थः-तत्पश्चात्, कृष्ण वासुदेव, श्री अरहा अरिष्टनेमि भगवान् के मुँह से इस अर्थ को सुन कर तथा हृदयङ्गम कर के, बड़े ही प्रसन्न हुए। और, बाँह फटकार कर एक मल्ल की भाँति अपना पद-न्यास कर के खड़े

हो गये। तब सिंहनाद कर भगवान् को वन्दना करने के पश्चात् वे हाथी पर बैठे। और द्वारिका नगरी की ओर, जिधर अपने महल थे उधर आये। हाथी से उतर कर बाहर की सभा में जहाँ सिंहासन था, वहाँ वे आये और पूर्व की तरफ मुँह कर सिंहासन पर जा बैठे। फिर कौटुम्बिक पुरुष को बुलाकर वे यों बोले—

मूलः—गच्छहं णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवईए णयरीए सिंघाडग जाव उवघोसेमाणा एवं वयह एवं खलु देवाणुप्पिया! बारवतीए णयरीए दुवालस्स जोयण आयामा जाव पच्चक्खं देवलोग भूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ, तं जो णं देवाणुप्पिया! इच्छइ बारवतीए णयरीए राया वा जुवराया वा ईसरे तलवरे माडंबिय कोडुंबिय इब्भसेट्ठी वा देवी वा कुमारो वा कुमारी वा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे जाव पव्वइत्तए तं नं कण्हे वासुदेवे विसज्जइ पच्छातुरस्स विय से अहा पवित्तं वित्तं अणुजाणइ महया इड्ढीसक्कारसमुदएणय से निक्खमणं करेइ दोच्चं पि तच्चं पि घोसणवं घोसहे घोसइत्ता ममएयं आणत्तियं पच्चप्पिणह! तएणं ते कोडुंबिय पुरिसा जाव पच्चप्पिणंइ।

भावार्थः—हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और इस द्वारिका नगरी के प्रत्येक बाजार में ड्योंडी पीट कर यों बोलो,

कि-हे देवानुप्रिय ! इस विशाल और स्वर्ग के समान, द्वारिका पुरी का विनाश असुर-कुमार में उत्पन्न हुए, द्वैपायन ऋषि के द्वारा होगा। अतएव इस द्वारिका के बड़े जागीरदार, राजा, युवराज, राजा के प्रधान, राजा के प्रिय पुरुष, छोटे जागीरदार, कोतवाल, कुटुम्ब के स्वामी, अर्थपति सेठ, राणियाँ, कुमार और कुमारिका, आदि सभी में से, जिस किसी देवानुप्रिय की इस द्वारिका नगरी में भगवान् के पास दीक्षा धारण करने की इच्छा हो, उन्हें स्वयं श्री कृष्ण दीक्षा के लिए आज्ञा प्रदान करते हैं। उन का दीक्षा महोत्सव वे बड़े ही समारोह से करेंगे। तथा दीक्षित के पीछे रहे हुए अवशेष कुटुम्ब का प्रतिपालन भी वे सदा के लिए करते रहेंगे। इस प्रकार दो तीन बार, घोषणा कर के, पीछा मुझे सूचित करो, कि मैं आपका फर्माया हुआ कार्य कर आया हूँ। ऐसी आज्ञा पाते ही, वह कौटुम्बिक पुरुष शहर में जाकर घोषणा कर आया।

मूलः—तए णं सा पउमावईदेवी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठ जाव हियया अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पवयणं से जहेयं तुब्भे वदह जं नवरं देवाणुप्पिया ! कराहं वासुदेवं आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि । अहासुहं देवाणुप्पिये ! मा पडिबंधं करेहि ।

भावार्थः—तत्पश्चात्, उस पद्मावती देवी ने श्री अरहा अरिष्टनेमि भगवान् के मुख से धर्म को श्रवण कर उसे प्रसन्नतापूर्वक हृदयङ्गम किया। और आनन्दित होती हुई, भगवान् को वन्दना कर के बोली—भगवन्! मैंने निर्ग्रंथों के प्रवचनों पर अपनी हार्दिक श्रद्धा प्रगट की है। तथा, मैं यह मानती हूँ, कि जिस प्रकार पुण्य-पाप का स्वरूप आपने फर्माया है, वह ठीक वैसा ही है। अब मैं संसार के जन्म-मृत्यु के विकराल भय से ऊब उठी हूँ। इस लिए कृष्ण वासुदेव से पूछ कर आपके समीप दीक्षा धारण करना चाहती हूँ। भगवान् बोले-पद्मावती, जैसे भी तुम्हें सुख हो वैसा ही करो; परन्तु 'शुभस्यशीघ्रम्' के नाते इस में तनिक भी विलम्ब अब न करो।

मूलः—तए णं सा पउमावई देवी धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ २ त्ता जेणेव बारवईणयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता धम्मियाओ जाणाओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयल जाव कट्टु कण्हं वासुदेवं एवं वयासी इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि अहासुहं देवाणुप्पिए! तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबिए पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! पउमावईए देवीए महत्थं निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह

उवट्ठवित्ताएयं आणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबिया जाव पच्चप्पिणंति।

भावार्थः—उसके बाद, वह पद्मावती रानी धार्मिक रथ में बैठ कर पुनः अपने महलों की ओर आई। रथ से उतर कर जहाँ श्री कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ वह गई। तथा उन से हाथ जोड़ कर बोली—हे स्वामी! आप की आज्ञा होने पर मैं अरिष्टनेमि भगवान् के द्वारा दीक्षित होना चाहती हूँ। कृष्णजी ने कहा प्रिये! तुम्हें मेरी आज्ञा है जिससे भी सुख तुम्हें प्राप्त हो, वैसा ही तुम करो। इस प्रकार पद्मावती रानी को आज्ञा दे देने के पश्चात्, कृष्णजी ने अपने विश्वासपात्र मनुष्यों को बुलाकर कहा—कि पद्मावती रानी के योग्य बड़े समारोह के साथ, दीक्षा महोत्सव की शीघ्र तैयारी करो। आज्ञा प्राप्त होते ही, उन मनुष्यों ने कृष्णजी की इच्छानुसार, महोत्सव की तैयारी कर दी। तदनन्तर उन्होंने श्री कृष्ण को वैसी ही सूचना भी दे दी।

मूलः—तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावई देवीं पट्टयं दुरुहइ २ त्ता अट्ठसएणं सोवन्न-कलस जाव निक्खमणाभिसएणं अभिसिंचइ २ त्ता सव्वालंकार विभूसियं करेइ २त्ता पुरिस सहस्सवाहिणिं सिवियं दुरूहावेइ २त्ता बारवईणयरीमज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ २ त्ता जेणेव रेवयए पव्वए जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ २त्ता सीयं ठवेइ २त्ता पउमावई

देवी सीयाओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अरहं अरिट्ठनेमीं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता वंदाति णमंसाति वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–

भावार्थः–तत्पश्चात्, उन श्री कृष्ण वासुदेव ने पद्मावती देवी को पाट पर बिठाया। एक सौ आठ स्वर्ण कलशों से यावत् दीक्षा अभिषेक उस का किया। सर्व प्रकार के आभूषणों से विभूषित उसे की। फिर पुरुषवाहिनी शिविका में उसे बिठला कर बड़े ही समारोह के साथ द्वारिका नगरी के मध्यस्थ सार्वजनिक मार्गों से होते हुए, रैवतगिरि के निकटस्थ सहस्राम्रनामक वन में उसे लाये। वहाँ शिविका से उतर कर पद्मावती देवी ने तथा कृष्ण ने भगवान् अरहा अरिष्टनेमि के चरणों में जा तिक्खुत्तो के पाठ से सप्रेम वन्दना की। वन्दना कर लेने के पश्चात्, वे कृष्ण वासुदेव भगवान् से इस प्रकार बोले–

मूलः–एस णं भंते! मम अग्गमहिसी पउमावई नामं देवी इट्ठा कंता पिया मणुन्ना मणामा अभिरामा जाव किमंग पुण पासणयाए? तन्नं अहं देवाणुप्पिया! सिस्सिणी भिक्खं दलयामि, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया सिस्सिणीभिक्खं। अहासुहं तए णं सा पउ-

मावई देवी उत्तर पुरत्थिमं दिसी भागं अवक्कमइ २ त्ता सयमेव आभरणालंकरं ओमुयइ २ त्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ २ त्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—आलित्ते जाव धम्ममाइक्खितं।

भावार्थः हे भगवन्! यह पद्मावती नामक देवी मेरी पट्टरानी है। मेरा इसके साथ अत्यन्त स्नेह है। यह प्रेम को उत्पन्न करने वाली है। और मेरे मन को प्रिय है। इसकी शान्त मुद्रा को बारम्बार देखते हुए भी मुझे कभी अरुची उत्पन्न नहीं होती। जिस प्रकार गूलर के फूलों का नाम तक सुनना भी दुर्लभ है, तो फिर उसके फूलों का देखना तो सचमुच में बड़ा ही दुर्लभ होना चाहिए। इसी प्रकार इस रानी का नाम सुनना भी जब कठिन है, तो फिर इसे देखने की तो सामर्थ्य ही किसकी है! परन्तु आज यह संसार के जन्म-मृत्यु के दुखों से ऊब उठी है। इस लिए दीक्षा ग्रहण करती है। हे भगवन्! मैं, इसी लिए, आप को इसे अपनी शिष्या के रूप में भिक्षा के समान समर्पण करता हूँ। इसे आप स्वीकार करें। उत्तर में भगवान् ने फर्माया, हे कृष्ण! जिस मे भी तुम्हें सुख हो करो। तत्पश्चात्, उस पद्मावती पट्टरानी ने उत्तर-पूर्व के मध्य की दिशा, ईशान्य कोण में जाकर, स्वय अपने हाथों से अपने गहनों को उतार फेंका। और, स्वयं पंच मुष्टि लोच कर के साध्वी का वेष धारण कर लिया। फिर भगवान् के पास जा कर वन्दना उन्हें की। तब वह यूँ बोली-प्रभो! संसार दुखों का सागर है। चारों ओर मोह माया की आग यहाँ

धधक रही है। अतः कृपा कर के अब साध्वी-जीवन का धर्म आप मुझे फर्मावें।

मूलः—तए णं अरहा अरिट्ठनेमी पउमावई देवीं सयमेव पव्वावेइ२ त्ता सयमेव मुंडावेइ सयमेव जक्खिणीए अज्जाए सिस्सिणिं दलयइ। तए णं सा जक्खिणी अज्जा पउमावई-देवीं सयं पव्वावेइ जाव संजमियव्वं। तए णं सा पउमावइ जाव संजमइ। तए णं सा पउमावई अज्जा जाया ईरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी।

भवार्थः—यो सुन कर, श्री अरहा अरिष्टनेमि भगवान् ने स्वयं पद्मावती रानी को प्रव्रजित कर दीक्षित किया। और उसे, यक्षिणी नामक एक साध्वी को शिष्या-रूप में प्रदान कर दी इस यक्षिणी आर्या ने पद्मावती साध्वी का स्वय अपने हाथों केश-लुञ्चन किया और संयम की क्रियाओं से पूर्ण-रूपेण परिचित उसे किया। वह पद्मावती साध्वी भी तब अपनी गुराणीजी की बताई हुई क्रिया के पालन करने में जुट पड़ी। अब वह पद्मावती आर्या पाँच समिति तीन गुप्ति, आदि नव वाड़ सहित ब्रह्मचारिणी हुई।

मूलः—तए णं सा पउमावई अज्जा जक्खिणीए अज्जाए अंतिए सामाइय माइयाइं एक्कारसं अंगाइं अहिज्जइ बहुहिं चउत्थ छट्ठट्ठम दसम दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं

तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरइ । तए णं सा पउमावई अज्जा बहु पडि पुन्नाइं वीसं वासाइं सामन्न परियाणं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेइ २ त्ता सहिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ २ त्ता जस्सट्ठाए कीरई नग्गभावे जाव तमट्ठं आराहेइ चरिमुस्सासेहिं सिद्धा ।

भावार्थः-फिर तो उन पद्मावती आर्याजी ने, अपनी गुराणी यक्षिणी आर्याजी से सामायिक से लगाकर ग्यारह अङ्ग तक ज्ञानाध्ययन किय । साथ ही साथ उपवासों में, बेला, तेला चोला पँचौला, आदि पन्द्रह-पन्द्रह महीने-महीने तक की, विविध प्रकार की तपश्चर्या करती हुई, वह अपनी आत्मा को कुन्दन के समान उज्ज्वल करती रहीं। इसी प्रकार, पूरे-पूरे बीस वर्ष तक उन्होंने दीक्षा-धर्म का पालन किया । अन्त में जब उनका शरीर ऐसी उग्र तपस्या के कारण दुर्बल हो गया और अन्तिम समय भी आ पहुँचा, तब उन दिनों, पूरे एक महीने का अनशन व्रत रख, अपने सर्व कर्मों का एकान्त क्षय उन्होंने कर डाला । तथा, अन्तिम श्वाँस के पश्चात्, वे मोक्ष पहुँचीं ।

मूलः-उक्खेवओ य अज्झयणस्स । तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णयरी रेवयए उज्जाणे नंदणवणे, तत्थणं बारवईए णयरीए कण्हे वासुदेवे राया होत्था, तस्सणं कण्ह-वासुदेवस्स गोरी देवी; वण्णओ, अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे, कण्हे णिग्गए, गोरी जहा

पउमावई तहा णिग्गया, धम्मकहा, परिसापडिगया, कण्हे वि पडिगया । तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा णिक्खंता जाव सिद्धा । एवं गंधारी, लक्खणा, सुसीमा, जंववई, सच्चभामा, रुप्पिणी, अट्ठ वि पउमावई सरिसाओ अट्ठ अज्झयणा ।

भावार्थः—श्री सुधर्म स्वामी से जम्बू स्वामी बोले-भगवन् ! अन्तगड़-सूत्र के पाँचवें वर्ग के दूसरे अध्याय में, जिस विषय का आपने अपने श्री-मुख से वर्णन किया है, उसे भली भाँति मैंने श्रवण कर लिया। परन्तु तीसरे अध्याय में, भगवान् महावीर स्वामी ने जो भाव दर्शाये हैं, उनके सम्बन्ध में अब कुछ कहने की कृपा करें। तब सुधर्म स्वामी ने फर्माया, हे जम्बू ! सुनो उस काल में भी वही द्वारिका नगरी थी। उसके पास रैवतगिरि नामक एक विशाल पर्वत था। और, नन्दनवन नामक अति ही भव्य एक बाग वहाँ था। उस द्वारिका में, उस समय कृष्ण वासुदेव राज कर रहे थे। इन कृष्ण वासुदेव के गौरी नामक एक पटरानी थी। श्री अरहा अरिष्टनेमि प्रभु देश-देशान्तरों में विचरते हुए, वहाँ पधारे। श्री कृष्ण वासुदेव प्रभु की सेवा में उपस्थित हुए। उनकी पटरानी गौरी भी वहाँ गई। जिस प्रकार पद्मावती देवी ने वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा ग्रहण की, उसी प्रकार गौरी पटरानी ने भी दीक्षा धारण की। ऐसे ही गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी, इन छहों पटरानियों ने भी, गौरी तथा पद्मावती के सदृश दीक्षा धारण की और अन्तिम समय में सभी ने अनशन व्रत कर

अपने-अपने कर्मों का क्षय किया। और समय पा कर के सब की सब वे मोक्ष में पहुँची ! इन छहों रानियों के छः अध्ययन, और गौरी एवं पद्मावती रानी इन दो के दो अध्ययन, यों ये कुल आठ अध्ययन हुए। ये सभी रानियाँ, कृष्ण वासुदेव की पटरानियाँ थीं।

मूलः—उक्खेवओ य नवमस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईणयरीए रेवयए पव्वए नंदनवणे उज्जाणे कण्हे राया। तत्थणं बारवईए णयरीए कण्हस्स वासुदेवस्स पुत्तए जंववतीए देवीए अत्तए संवे नामं कुमारे होत्था, अहीण। तस्सणं संबस्स कुमारस्स मूलसिरी नामं भारिया होत्था, वण्णओ। अरहा अरिट्ठनेमि समोसढे। कण्हे णिग्गए, मूलसिरी विणिग्गया जहा पउमावइ, नवरं देवाणुप्पिया! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि, जाव सिद्धा। एवं मूलदत्तावि।

भावार्थः जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मस्वामी से कहा, कि–हे भगवन्! अन्तगड़–सूत्र के पाँचवें वर्ग के आठवें अध्याय में, जो भाव आपने फर्माये, उनका विधि-पूर्वक श्रवण मैंने किया। अब नवें अध्याय के जो भाव हैं, उन्हें फरमाने की कृपा करें।

हे जम्बू! उस काल में द्वारिका नगरी, रैवतगिरि और नन्दनवन आदि से बड़ी ही सुशोभित थी। कृष्ण

वासुदेव वहाँ के राजा थे । उनका पुत्र और जाम्बवती का अङ्गज साम्ब नामक कुमार था । इन साम्ब कुमार के 'मूल-श्री' नामक पत्नी थी । श्री अरहा अरिष्टनेमि भगवान् विचरते हुए एक दिन वहाँ पधारे । भगवान् के शुभागमन का सन्देश प्राप्त होते ही कृष्ण वासुदेव भगवान् की सेवा में पहुँचे । मूल-श्री भी वहाँ पहुँची । भगवान् ने उन्हें वैराग्यमय प्रवचन सुनाया । प्रवचन सुन, मूल-श्री का मन संसार से हट गया । उसके मन में वैराग्य के भाव जागृत हो गये । उसने श्रीकृष्ण वासुदेव से आज्ञा सम्पादन कर, पद्मावती पटरानी की भाँति दीक्षा अङ्गीकार की । और, यथा-समय अन्त में वह भी मोक्ष-धाम को पहुँची । इसी प्रकार, साम्ब कुमार की द्वितीय पत्नी मूलदत्ता ने भी दीक्षा धारण कर, अन्त में निर्वाण-पद को प्राप्त किया ।

❀ इति पञ्चमो वर्गः ❀

षष्ठमो-वर्गः

मूलः—जइणं भंते छट्ठमस्स उक्खेवओ। नवरं सोलस अज्झयणा पराणत्ता तंजहा-मंकाई, किंकमे चेव मोग्गरपाणी य कासवे। खेमए धितिधरे चेव, केलासे हरिचंदणे॥ वारत्त सुदंसण पुन्नभद्द सुमणभद्द सुपइट्ठे मेहे, अइमुत्ते अ अलक्खे अज्झयणाणं तु सोलसयं॥ जइ सोलस अज्झयणा पराणत्ता, पढमस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पराणत्ते।

भावार्थः-श्री सुधर्म स्वामी से जम्बूस्वामी बोले—भगवन्! पञ्चमवर्ग के जो भाव आपने फर्माये, वह मैंने सुने। पर छट्ठे वर्ग मे क्या बात है? कृपया उसे फर्मावें।

हे जम्बू! सुन, पञ्चमवर्ग के सोलह अध्याय हैं। वे इस प्रकार हैः-

(१) मङ्काई, (२) किङ्कम (३) मुद्गरपाणि (४) काश्यप, (५) क्षेमक, (६) धृतिधर, (७) कैलाश, (८) हरिचन्दन, (९) वारत्त, (१०) सुदर्शन, (११) पूर्णभद्र, (१२) सुमनभद्र, (१३) सुप्रतिष्ठ, (१४) मेघ, (१५) अतिमुक्त और (१६) अलक्ष। इन सोलहो के नाम से सोलह अध्याय हैं। भगवन्! इन सोलह अध्यायों में से सब से प्रथम

के अध्याय में क्या मतलब है ? कृपया फर्मावें ।

मूलः—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं राय गिहं णयरे, गुणसीलए चेइए, सेणिए राया, तत्थणं मंकाई णामं गाहावई परिवसइ अड्ढे जाव अपरिभूए। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणं भगवं महावीरे आदिकरे गुणासिलए जाव विहरइ, परिसा निग्गया। तए णं से मंकाई गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे जहा पन्नतीए गंगदत्ते तहेव, इमोवि जेट्ठ पुत्तं कुडुंबे ठेवत्ता पुरिससहस्सवाहिणीए सीयाए णिक्खंते जाव अणगारे जाए ईरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी तए णं से मंकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइय माइयाइं एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जइ, सेसं जहा खंदगस्स गुण रयणं तवो कम्मं, सोलस वासाइं परियाओ, तहेव विपुले सिद्धे। दो चस्स उक्खेवओ किंकमे वि एवं चेव जाव विपुले सिद्धे।

भावार्थः—इस प्रकार हे जम्बू ! भगवान् महावीर के समय में, राजगृह नामक एक नगर था। उसके ईशान्य

कोण की ओर गुणशील नामक एक अत्यन्त सुन्दर बाग था। उन दिनों उस नगरी में, श्रेणिक-बिम्बिसार नामक राजा वहाँ शासन करता था। वहाँ मङ्काई नामक गाथापति रहता था। वह बड़ा सम्पत्तिशाली तथा निडर था। उसी समय में धर्म के प्रचारक, श्रमण भगवान् महावीर विचरते हुए राजगृह के 'गुणशील' नामक बाग में एक दिन पधारे। प्रभु के पदार्पण का शुभ सन्देश पाते ही, उनके दर्शनार्थ जनता किसी प्रचण्ड नद के टूट जाने वाले बाँध की भाँति उमड़ पड़ी। मङ्काई गाथापति को भी यह खबर हुई। जिस प्रकार भगवती जी सूत्र में गङ्गदत्तजी का उल्लेख है, उसी प्रकार ये भी प्रभु के चरण-वन्दन की चाह में अपने घर से निकले। प्रभु का प्रवचन श्रवण कर उनके हृदय में वैराग्य बरसाती नदी की भाँति उमड़ आया। बड़े पुत्र को गृह-कार्य का समस्त भार सौंप कर, बड़े समारोह के साथ उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। पाँच समिति तथा तीन गुप्ति सहित नव बाड़ युक्त ब्रह्मचारी हुए। तत्पश्चात्, उन मङ्काई मुनि ने भगवान् महावीर के अनुयायी स्थविर मुनियों से, सामायिक से लेकर ग्यारह अङ्गों तक पूरा-पूरा ज्ञानाध्ययन किया। इनका अवशेष वर्णन खन्धक मुनि की भाँति ही समझना चाहिए। अर्थात् इन्होंने भी गुणरत्न आदि तपस्याएँ कीं। सोलह वर्ष पर्यन्त चारित्र-पालन कर, अन्तिम समय में, अनशन व्रत कर के वे विपुल गिरि पर, मोक्ष में पहुँचे। इसी प्रकार, राजगृह नगर के निवासी, दूसरे 'किङ्कम' नामक गाथापति ने भी दीक्षा अङ्गीकार कर मोक्ष प्राप्त किया।

मूलः—तच्चस उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे

गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, चेल्लणादेवी। तत्थणं रायगीहे णयरे अज्जुणए णामं माला गारे परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्सणं अज्जुणयस्स मालायारस्स वंधुमई णामं भारिया होत्था, सूमाला। तस्स णं अज्जुणयस्स मालायारस्स रायगिहस्स नयरस्स बहिया- एत्थणं महं एगे पुप्फारामे होत्था, कण्हे जाव निकुरंव भूए दसद्धवन्नकुसुमकुसुमिए पासाई ए ४। तस्स णं पुप्फारामस्स अदूर सामंते तत्थ णं अज्जुणयस्स मालागारस्स अज्जतं पज्जतं पिइपज्जयांगए अणेगकुल पुरिसपरंपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था, पोराणे दिव्वे सच्चे जहा पुराणभद्दे। तत्थणं मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं पलसहस्साणि- प्फरणं अयोमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ।

भ.वार्थः-श्री सुधर्मस्वामी से जम्बूस्वामी बोले-भगवन्! छटे वर्ग के द्वितीयाध्याय का वर्णन, जो आपने फर्माया, उसे मैंने ध्यान-पूर्वक सुन पाया। अब कृपा कर फर्मावें, कि तृतीयाध्याय का तात्पर्य क्या है? हे जम्बू! सुनो, भगवान् महावीर स्वामी के समय में राजगृह नामक एक सुन्दर नगरी, गुणशील नामक उद्यान सहित सुशोभित थी। उस समय, उस नगरी में, श्रेणिक राजा राज करता था। जिसके चेलणा नामक एक परम प्रिय पत्नी

थी। उसी राजगृह नगरी में 'अर्जुन' नामक एक माली निवास करता था। यह माली बड़ा ही सुन्दर और सुडौल तथा सम्पत्तिशाली और निर्भय था। इसके बन्धुमति नामक एक महान् सुन्दर और सुकुमार धर्म पत्नी थी। राजगृह नगरी के बाहर, इस 'अर्जुन' माली की एक सुन्दर पुष्पवाटिका थी। जिसमें पाँचो वर्ण के पुष्प विकसित हो रहे थे। इस सुन्दर और मनोहर पुष्पवाटिका की अद्वितीय छटा, दर्शकों के चित्त को हरण करनेवाली थी। फूलों के इस उपवन के अति निकट ही में 'अर्जुन' के बड़े बूढ़े पिता-मह, आदि की वंश परम्परा से चला आने-वाला पूर्णभद्र की भाँति प्राचीन, प्रधान एवं सत्य एक यक्ष का 'यक्षायतन' था। उसमे 'मुद्गरपाणि' नामक एक यक्ष की मूर्ति (प्रतिमा) अपने हाथों में एक हज़ार पल का, भारी एक लोहमयी मुद्गर ग्रहण किये हुए प्रतिष्ठित थी।

मूलः—तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणिजक्खस्स भत्ते यावि होत्था, कल्लाकल्लिं पच्छियपडिगाइं गेण्हइ २ त्ता रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पुप्फुच्चयं करेइ २ त्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाइ, गहित्ता जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चयणं करेइ २ त्ता जंनुपायपडिए पणामं करेइ २ त्ता

तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।

भावार्थः—तदुपरान्त वह 'अर्जुन' मालाकार बाल्यावस्था से ही, उस 'मुद्गरपाणि' यक्ष की सेवा भक्ति कर के उसका पूर्ण भक्त बना हुआ था। वह बाँस की टोकरी ले, नित्यप्रति राजगृह नगरी से निकल कर, उस पुष्प-वाटिका में आता। वहाँ वह फूलों को चुन कर एकत्रित करता। फिर उन फूलों में से अच्छे-अच्छे मनोरम फूलों को लेकर, उस 'मुद्गरपाणि' यक्ष के स्थान पर आता। और वहाँ उस यक्ष के सम्मुख फूलों का ढेर कर, अपने दोनों घुटनों को भूमि पर टिका नमस्कार करता। तत्पश्चात्, राजगृह में गृह कार्यादि कर वह अपना निर्वाह करता था।

मूलः—तत्थणं रायगिहे णयरे ललिया नामं गोट्ठी परिवसइ, अड्ढा जाव अपरिभूया जंकयसुकया यावि होत्था। तए णं रायगिहे नगरे अएणया कयाइ पमोए घुट्ठे यावि होत्था। तए णं से अज्जुणए मालागारे कल्लं पभूयतराएहिं पुप्फेहिं कज्जमितिकट्टु पच्चूसकालसमयंसि बंधुमतीए भारियाए सद्धिं पच्छियपिडयाइं गेरहइ २ त्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ २ त्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव गवागच्छइ २ त्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ।

भावार्थः-उसी राजगृह में एक उद्दण्ड मित्र-मण्डली रहती थी। जो 'ललित' नाम से प्रसिद्ध थी। उन उद्दण्ड मित्र-जनों के पास सम्पत्ति भी पर्याप्त थी। और वे बिलकुल निर्भय थे। वे जो भी भला या बुरा कोई भी कार्य करते, उसको जनता अच्छा ही समझती थी। एक दिन उसी राजगृह में एक होनेवाले महोत्सव की घोषणा हुई। तब अर्जुन माली ने सोचा, कि कल उत्सव के कारण फूलों की बिक्री भी विशेष होगी। इसी उद्देश्य से प्रेरित हो, प्रातःकाल के होते ही वह, फूल रखने की टोकरियाँ आदि लेकर, अपनी स्त्री 'बन्धुमति' के सहित राजगृह के मध्य में, सार्वजनिक मार्गों से होता हुआ, अपनी पुष्प-वाटिका की तरफ चल दिया। वहाँ आकर वे दोनों दम्पति फूलों को चुन-चुन कर एकत्रित करने लगे।

मूलः—तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्ख-स्स जक्खाययणे तेणेव उवागया अभिरममाणा चिट्ठंति। तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमई ए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ २ त्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गर पाणिस्स जक्खस्स जक्खायणे तेणेव उवागच्छइ। तए णं ते छ गोठिल्ला पुरिसा अज्जुणयं मालागारं बंधुमईए भारियाए सद्धिं एज्जमाणं पासइ पासित्ता अन्नमन्नं एवं वयासी-एस णं

देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं इहं हव्वमागच्छइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं अज्जुणयं मालागारं अवओडयं बंधणयं करेत्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं विउलाइं भोग भोगाइं भुंजमाणाणं विहरित्तए त्तिकट्टु एयमट्ठं अन्नमन्नस्स पडिसुणेंति पडिसुणित्ता कवाडंतरेसु निलुक्कंति निच्चला निप्फंदा तुसिणीया पच्छण्णा चिट्ठंति ।

भावार्थः—तत्पश्चात्, उस 'ललित' नामक उद्दण्ड टोली के छः गोष्टिक-मित्र-जन, उस मुद्गरपाणि यक्ष के स्थान की ओर आकर, क्रीड़ा करने लगे। उधर वह अर्जुन माली भी अपनी स्त्री के साथ फूलों को इकट्ठा कर और उनमें से कुछ अच्छे अच्छे फूलों को लेकर उस यक्ष के स्थान की ओर आ रहे थे । इतने ही उन छःहों उद्दण्ड मित्रों ने अर्जुन माली को सपत्नीक आते हुए देखा। वे परस्पर बोले—मित्रो ! यह ठीक है। देखो, यह अर्जुन माली भी अपनी स्त्री सहित यहाँ आ रहा है। हम सब उस अर्जुन माली को, औंधी मुश्कियों से बल-पूर्वक बाँध कर लुढ़का दें। और फिर उसकी स्त्री बन्धुमति के साथ, खूब अच्छी तरह से भोग विलास करें । ऐसा परस्पर सलाह-मशविरा कर, वे छहों मित्र-जन किवाड़ों के पीछे हिलना-डुलना बन्द कर चुपचाप छिप कर खड़े हो गये।

मूल:—तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं जेणेव मोग्गरपाणि-जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आलोए पणामं करेइ २ त्ता महरिहं पुप्फच्चणं करेइ २ त्ता जंनुपायपडिए पणामं करेइ । तए णं ते छ गोठिल्ला पुरिसा दवदवस्स कवाडंतरेहिंतो णिग्गच्छंति, णिगच्छित्ता अज्जुणयं मालागारं गेण्हंति गेण्हित्ता अवओडगबंधणं करेंति करित्ता बंधुमतीए मालागारिए सद्धिं विपुलाइं भोग भोगाइं भुंजमाणा विहरंति । तए णं तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए ४-। समुप्पन्ने एवं खलु अहं बालप्पभि तिं चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लिं जाव वित्ति कप्पेमाणे विहरामि, तं जइणं मोग्गर-पाणिजक्खे इह संनिहिते होंते सेणं किं ममं एयारूवं आवइं पावेज्जमाणं पासंते ? तं नत्थि णं मोग्गरपाणिजक्खे इह संनिहिते, सुव्वत्तं तं एस कट्ठे ।

भावार्थ:—तत्पश्चात्, वह अर्जुन माली अपनी स्त्री सहित मुद्गरपाणी यक्ष के स्थान पर आया। और, यक्ष की प्रतिमा को देखते ही उसने उन्हें नमस्कार किया । फिर उस यक्ष के सम्मुख फूलों का ढेर कर, भूमि पर घुटने टिका दोनों दम्पति ने प्रणाम किया । इतने ही में उन छहों उद्दण्ड मित्रों ने किवाड़ों के पीछे से निकल कर, एका-

एक अर्जुन माली को धर पकड़ा। और उसे उलटे हाथों [मुसकियाँ] दे बाँधा। फिर उसकी स्त्री बन्धुमति मालिन के साथ उन आततायियों ने बलात्कार किया। इस घटना को अपने आखों देख, अर्जुन माली को यह विचार उत्पन्न हुआ कि अहो! मैं बाल्यावस्था से ही इन मुद्गरपाणि यक्ष की नित्यप्रति सेवा करता आ रहा हूँ। यदि वास्तव में मुद्गरपाणि यक्ष इस प्रतिमा में या इस के निकट होते, तो क्या वे मुझे इस प्रकार आपत्ति में फँसा हुआ कभी देखते रहते? नहीं, यह कभी नहीं हो सकता, इसलिए मुद्गरपाणि यक्ष यहाँ है, ऐसा मालूम नहीं होता। यह जो उनकी प्रतिमा है। अतः यह तो केवल काष्ट-मात्र ही है।

सूलः—तए णं से मोग्गरपाणि जक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अगमेयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणेत्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरयं अणुपविसइ २ त्ता तडतडस्स बंधाइं छिंदइ, तं पलसहस्सं णिप्फणणं अयोमयं मोग्गरं गेण्हइ२ ते इत्थिसत्तमे पुरिसे घाएइ। तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणाजक्खेणं अणाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरं तेणं कल्लाकल्लिं छ इत्थिसत्तमे पुरिसे घाएमाणे विहरइ।

भावार्थः-तत्पश्चात् अर्जुन माली के इन विचारों को जान कर, वह मुद्गरपाणि यक्ष अर्जुन माली के शरीर में प्रवेश हो गया। उस यक्ष की शक्ति के प्रभाव से अर्जुन ने अपने बँधे हुए बन्धनों को तड़ाक से। तोड़ डाला और उस हज़ार

पल के भारी लोहे के मुद्गर को उसने हाथ में उठा लिया। फिर क्या था, उठाया उसने उस मुद्गर को और लगा करने संहार उन छहों उद्दण्ड मित्रजनों एवं उस स्त्री का! यों उन सातों ही को बात की बात ही में उसने सदा के लिए धराशायी कर दिया। तदनन्तर, वह अर्जुन माली उस यक्ष के अधीन हो, राजगृह नगरी के चहुँ ओर भ्रमण करता हुआ नित-नये छः मनुष्य और एक स्त्री, यों सात व्यक्तियों को, मारता फिरता। *

मूलः—तए णं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ ४-एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे मोग्गर पाणिणा अणाइट्ठे समाणे रायगिहे णयरे बहिया छ इत्थि सत्तमे पुरिसे घाएमाणे विहरइ। तए णं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे जाव घाएमाणे जाव विहरइ तं माणं तुब्भे केई तणस्स वा कट्ठस्सवा पाणियस्स वा पुप्फफलाणं वा अट्ठाए सइ निग्गच्छउमाणं तस्स सरीरस्स वअत्ती भविस्सइ त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि घोसणयं घोसेह घोसित्ता खिप्पामेव ममेयं पच्चप्पि-

* यूँ पाँच महीने और तरह दिनों मे ११४१ नर-नारियों का काम उसने तमाम किया। जिस में १०७८ मनुष्य और १६३ स्त्रियाँ थी।

णह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

भावार्थः-तब तो प्रतिदिन राजगृह नगरी के समस्त छोटे बड़े मार्गों पर जनता इकट्ठी हो कर, परस्पर इस घटना की बड़ी जोरों से चर्चा करने लगी। वे एक दूसरे को सम्बोधित कर कहने लगे, कि नगरी के बाहर अर्जुन माली के शरीर में मुद्गरपाणि यक्ष ने प्रवेश कर लिया है। जिससे एक स्त्री और छः मनुष्यों को, नित्य प्रति वह मार डालता है। यह बात राजा श्रेणिक के कानों पर भी किसी दिन पहुँची। राजा ने राजकीय विश्वास-पात्र मनुष्य को बुला कर कहा, कि-"शहर भर में जाकर यह घोषणा कर दो, कि "शहर के बाहर अर्जुन माली यक्षाधीन हो कर एक स्त्री और छः मनुष्य यों सात व्यक्तियों को सदैव मार रहा है। इसलिए कोई भी मनुष्य शहर के बाहर घास, लकड़ी, पानी, फल और फूल आदि लेने के लिए न जायाँ करें। क्योंकि, इन वस्तुओं को लेने के लिए जाते समय उस यक्ष के समीप पहुँचने पर, कहीं तुम्हारे शरीर पर कोई आपत्ति खड़ी न हो जाय। अतएव शहर के बाहर न जाने पर ही प्रजाजनों में अमन-चैन बना रहेगा। ऐसी मेरी भावना है।" इस प्रकार की घोषणा करके शीघ्र ही पुनः आकर मुझे सूचित करो। तत्पश्चात्, उस राजकीय पुरुष ने राजा के आदेशानुसार शहर-भर में घोषणा कर के वापिस राजा को सूचना कर दी।

मूलः-तत्थ णं रायगिहे णयरे सुदंसणे णामं सेट्ठी परिवसइ, अड्ढे। तए णं से सुदं-

सणे समणोवासए यावि होत्था। अभिगय जीवाजीवे जाव विहरइ। तेणं कालेणं तेणं सम-
एणं समणे भगवं महावीरे जाव समोसढे विहरइ। तए णं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव
महापहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ जाव किमंग पुण विपुलस्स अट्ठस्स गहणयाए?
तए णं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अयं अज्झत्थिए जाव
समुपन्ने-एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं
वंदामि नमंसामि, एवं संपेहेइ २ त्ता जेणेव अम्मापीयरो तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयल
परिग्गहियं जाव एवं वयासी—एवं खलु अम्मताओ! समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ तं
गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि जाव पज्जुवासामि।

भावार्थः— उस समय राजगृह नगरी में एक बड़े सम्पत्ति शाली 'सुदर्शन' नामक सेठ रहते थे। ये श्रमणो-
पासक श्रावक थे। इन्हें जड़ और चैतन्य का भला बोध था। ये पर्याप्त मात्रा में, धर्म-ध्यान करते हुए अपने जीवन
को उन्नति पथ पर ले जा रहे थे। उसी समय में, श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी एक समय धर्मोपदेश करते हुए,
उसी नगरी के बाहर उद्यान में आ विराजे। स्वामी के पदार्पण की खुश खबर पाते ही छोटे-बड़े सभी बाजारों में

लोग एक दूसरे से कह रहे थे, कि जब भगवान् के दर्शन से ही अपूर्व लाभ होता है, तो फिर उनकी पीयूष-वर्षी पवित्र वाणी का रसास्वादन करने में तो अवश्य ही अवर्णनीय आनन्द होता है। सुदर्शन सेठ ने भी प्रभु-आगमन की खबर पाते ही विचार किया, कि अहो! सद्भाग्य से भगवान् ने इस क्षेत्र को पावन किया है। मैं भी जाऊँ। उन्हें वन्दना करूँ। और यों अपने जन्मजन्मान्तरों के पाप-तापों का समूल नाश मैं करूँ। ऐसे शुभ विचार करके, माता-पिता के पास वे आये और अपने दोनों हाथों को जोड़ कर वे बोलेः—परम पूजनीय माता-पिताओ! भगवान् महावीर यहाँ पधारे हुए हैं। अतः उन्हें मैं वन्दना करने के, तथा उनकी सेवा करने के लिए जाऊँ, ऐसी मेरी इच्छा है।

मूलः—तए णं तं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो एवं वयासी—एवं खलु पुत्ता! अज्जुणे मालागारे जाव घाएमाणे विहरइ, तं मा णं तुमं पुत्ता! समणं भगवं महावीरं वंदए णिग-च्छाहि मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ, तुमएणं इह गए चेव समणं भगवं महावीरं वंदाहि णमंसाहि। तए णं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापियरं एवं वयासी—किएणं अहं अम्म-याओ! समणं भगवं महावीरे इहमागयं इह पंत्त इह समोसढं इह गए चेव वंदिस्सामि नमंस्सामि? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे समणं भगवं

महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि ।

भावार्थः- तत्पश्चात्, सुदर्शन सेठ के माता-पिता ने कहा—हे पुत्र ! अर्जुन माली, सात व्यक्तियों को नित्य प्रति मार डालता है। इसलिए तुम अकेले, भगवान् को नमस्कार करने के लिए मत जाओ। न जाने, वहाँ जाने पर कहीं कोई व्यर्थ ही की दुर्घटना तुम्हारे शरीर पर घटित हो जाय। अतएव यदि तुम चाहो, तो यहीं से उन भगवान् को नमस्कार कर सकते हो। वे सर्वज्ञ हैं। यहीं से की हुई तुम्हारी भक्ति को वे अवश्यमेव स्वीकार करेंगे। तब वह सुदर्शन सेठ अपने माता-पिता से बोले- हे पूज्य माता और पिता ! जब भगवान् महावीर यहाँ पधार गये; अपनी बस्ती में जब वे आ विराजे; उपदेश देने को उपस्थि जब वे हो गये, तो फिर मैं कैसे उन्हें यहीं से वन्दना कर लूँ ? क्या, ऐसा करने से मैं कृत—कार्य कभी हो सकता हूँ ? नहीं, नहीं, कभी नहीं। अतः हे माता और मेरे पूजनीय पिता ! अगर आप की आज्ञा प्राप्त हो जावे, तो मैं भी सर्वज्ञ भगवान की सेवा के लिए, उनकी चरण शरण में जाकर, अपने भवजनित तापों का कुछ न कुछ अंश में शमन कर सकूँ।

मूलः—तए णं तं सुदंसण सेट्ठिं अम्मापियरो जाहे नो संचायंति बहुहिं आघवणाहिं ४ जाव परूवेत्तए तए णं से अम्मापियरो ताहे अकामया चेव सुदंसणं सेट्ठिं एवं वयासी-अहा-सुहं देवाणुप्पिया ! तए णं से सुदंसणे अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावे-

साइं जाव सरीरे सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता पायविहार चारेणं रायगिहं नगरं मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ २ त्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामंते णं जेणेव गुणासिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थए गमणाए । तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं २ पासइ २ त्ता आसुरुत्ते तं पलसहस्स णिप्फन्नं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे २ जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थए गमणाए ।

भावार्थः—सुदर्शन सेठ की नाना प्रकार की दलीलों से परास्त हुए, उनके माता-पिता, उन्हें अपने सत्य सङ्कल्प से एक तिल-भर भी इधर-उधर न डिगा सके । और जब वे उन्हें रोकने में असमर्थ हो गये, तब वे अपने पुत्र से बोले-यदि हमारा कहना नहीं मानना, यही तुमने निश्चय किया हो, तो तुम्हें जिसमें भी सुख ज्ञात हो, वैसा करो ! यों, माता-पिता की आज्ञा हो जाने पर, सेठ ने स्नान किया । और शुद्ध वस्त्रों से सज कर वे घर से निकल पड़े । राजगृह के मध्य रास्तों में पैदल ही पैदल, मद्गरपाणि यक्ष के स्थान के निकट होते हुए, गुणशील नामक बाग की तरफ से, जहाँ भगवान् महावीर स्वामी विराजते थे, उधर आ रहे थे । तब वह मद्गरपाणि यक्ष, सुदर्शन श्रमणोपासक को कुछ समीप ही में आते देख, क्रोधित हुआ । और, अपने उस एक हजार

पल के भारी लोहे के मद्गर को फिराता तथा उछालता हुआ, उन सुदर्शन सेठ के निकट आ पहुँचा।

मूलः—तए णं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाणं पासइ २ त्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचालिए असंभंते वत्थएणं भूमिं पमज्जइ २ त्ता करयल एवं वयासी—नमोत्थुणं अरहंताणं जाव संपत्ताणं, नमोत्थुणं समणस्स जाव संपाउ-कामस्स, पुव्विं च णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्च-क्खाए जावज्जीवाए, थूलए मुसावाए, थूलए अदिन्नादाणे, सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छापरिमाणे कए जावज्जीवाए तं इयाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए सव्वं मुसावायं सव्वं अदत्तादाणं सव्वं मेहूणं सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि जाव-ज्जीवाए सव्वं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, जइणं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पेइ पारेत्तए, अहणो एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि तओ मे तहा पच्चक्खाए

चेव त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ ।

भावार्थः-उसके बाद भी वे सुदर्शन सेठ, अपनी ओर आते हुए उस यक्ष को देख कर, भय, त्रास, उद्वेग और क्षोभ से रहित बने रहे। तथा, उसे देख कर ज़रा भी चलायमान् वे नहीं हुए। निर्भय होकर सुदर्शन सेठ ने भूमि को वस्त्र से परिमार्जित की और हाथ जोड़ कर बोले-नमस्कार हो, उन अर्हन्तों को, जो मोक्ष में पधार गये हैं। एवं नमस्कार हो, उन वर्तमान अर्हन्तों को, जो मोक्ष में पधारने वाले हैं। पहले मैंने भगवान् महावीर के समीप, स्थूल प्राणातिपात जीवन पर्यन्त के लिए पचक्खा था। इसी प्रकार स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान, और स्व-स्त्री सन्तोष का अणुव्रत धारण किया था। सम्पत्ति की भी जीवन पर्यन्त के लिए यथेष्ट मर्यादा की थी। और इस समय उन्हीं प्रभु की साक्षी से सर्व प्राणातिपात का त्याग जीवन पर्यन्त के लिए करता हूँ। इसी प्रकार मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह का जीवन भर के लिए सर्वथा प्रकार से त्याग करता हूँ। और, क्रोध, मान माया और लोभ आदि यावत् मिथ्यात्वदर्शनशल्य तक अठारह ही पापों को जीवन पर्यन्त के लिए त्यागता हूँ। इसके अतिरिक्त, सर्वथा प्रकार से आहार-यानी खाद्य, स्वाद, चारों ही प्रकार के आहार का भी जीवन पर्यन्त के लिए त्याग करता हूँ। यदि, इस उपसर्ग से बच जाऊँ, तो मुझे ये त्याग सर्वथा प्रकार से नहीं हैं। अर्थात् मैं भोजन वगैरह ले सकूँगा। और, यदि इस उपसर्ग से मैं मुक्त न हो सकूँ तो जिस प्रकार मैंने त्याग किये हैं; उसी तरह से मेरे त्याग हैं। इस प्रकार, सागारी अनशन व्रत्त को धारण कर के सेठ सुदर्शन, प्रभु-भक्ति में तल्लीन

हो गये ।

मूलः—तए णं से मोग्गरपाणि जक्खे तं पलसहस्सणिप्फन्नं अयोमयं मोग्गरं उल्लाले-
माणे २ जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता नो चेवणं संचाएति सुदंसणं
समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए तएणं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं
सव्वओ समंताओ परिघोलेमाणे २ जहे नो चेवणं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा
समभिपडित्तए,ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसिं ठिच्चा सुदंसणं
समणोवासयं अणिमिसाए दट्ठीए सुचिरं निरिक्खइ २ त्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं
विप्पजहाइ २ त्ता तं पलसहस्सनिप्फन्नं अयोमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव
दिसं पडिगए ।

भावार्थः—तत्पश्चात्, वह मुद्गरपाणि यक्ष अपने उस एक हजार पल के भारी लोहे के मुद्गर को उछालता तथा
फेंकता हुआ, उन सुदर्शन श्रावक के ऊपर अचानक टूट पड़ा । किन्तु सुदर्शन श्रावक का तेज देख कर उनको
कष्ट पहुँचाने में वह समर्थ न हो पाया । तब तो वह मुद्गरपाणि यक्ष, सुदर्शन श्रावक के चहुँ ओर घूमा । फिर भी

उनके तेज के सामने, यक्ष का कुछ भी बल नहीं चला। तब वह यक्ष उन सुदर्शन सेठ के सम्मुख बराबर खड़ा हो कर, उनको अनिमेष दृष्टि से बहुत देर तक देखता रहा। फिर वह यक्ष अर्जुन माली के शरीर से निकल गया और उस मुद्गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी ओर वह चला गया।

मूलः—तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पजढे समाणे धसत्ति धरणि तलंसि सव्वंगेहिं निवडिए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए निरुवसग्गमिति कट्टु पडिमं पारेइ। तए णं से अज्जुणए मालागारे तओ मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे उट्ठेइ २ त्ता सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—तुब्भेणं देवाणुप्पिया के कहिं वा संपत्थिया तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुयणं मालागारं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! अहं सुदंसणे णामं समणोवासए अभिगय जीवाजीवे गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीरं वंदए संपत्थिए।

भावार्थः—तदनन्तर, वह 'अर्जुन माली, उस यक्ष के पन्जे से विमुक्त होते ही, धमाक से भूमि पर जा गिरा। उधर, उन सुदर्शन श्रावक ने अपने को उपसर्ग रहित जान कर अपनी प्रतिज्ञा को पाला। कुछ समय के पश्चात्,

वह 'अर्जुन माली' स्वस्थ हो कर खड़ा हुआ। और, सुदर्शन से बोला-'हे देवानुप्रिय! तुम कौन हो? और कहाँ जाते हो?' सुदर्शन ने कहा- 'मैं सुदर्शन' नामक श्रमणोपासक एक व्यक्ति हूँ। मुझे जीव-अजीव का भी बोध है। गुणशील उद्यान में भगवान् महावीर का शुभागमन हुआ है उन्हीं को नमस्कार करने के लिए मैं वहाँ जा रहा हूँ।

मूलः-तए णं से अज्जुणए मालागारे सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी-तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! अहम वि तुमए सद्धिं समणं भगवं महावीरं वंदेत्तए जाव पज्जुवासेत्तए अहासुहं देवाणुप्पिया! तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे उवागच्छइ २ त्ता अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं समणं भगवं महावीरे तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ। तए णं समणं भगवं महावीरं सुदंसणस्स समणो वासयस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य धम्म कहा। सुदंसणे पडिगए।

भावार्थः-उसके बाद, उस 'अर्जुन' माली ने सुदर्शन सेठ को इस प्रकार कहा-' हे देवानुप्रिय! मैं भी

तुम्हारे साथ भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना तथा उनकी सेवा-भक्ति के लिए चलना चाहता हूँ।' उत्तर में सुदर्शन सेठ ने कहा-'ज्यों तुम्हें सुख हो, त्यों करो। ऐसा कह कर, वह सुदर्शन सेठ, 'अर्जुन' माली को साथ ले जिस ओर गुणशील बाग में भगवान् महावीर विराजते थे, वहाँ आया। दोनों ने भगवान् को वन्दना की। और अपने जीवन तथा जन्म को कृत कृत्य किया। भगवान् ने भी उन दोनों को धर्म-कथा सुनाई। सुदर्शन सेठ धर्मोपदेश श्रवण करने के पश्चात् शहर में लौट आये।

मूलः—तए णं से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठ एवंवयासी-सद्दहामिणं भंते ! निग्गंथं पावयणं जाव अब्भुट्ठेमि। अहासुहं देवाणुप्पिया ! तए णं से अज्जुणए मालागारे उत्तर पुरत्थिमं दिसिभागे अवक्कमइ २ त्ता सयमेव पंच मुट्ठियं लोयं करेइ २ त्ता जाव अणगारे जाए जाव विहरइ। तए णं से अज्जुणए अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे जाव पव्वइए तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता इमं एयारुवं अभिग्गहं उग्गिण्हइ-कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु

अयमेयारूवं अभिग्गहं ओगेण्हइ २ त्ता जावज्जीवाए जाव विहरइ ।

भावार्थः—परन्तु 'अर्जुन' माली ने जो भगवान् महावीर का उपदेश सुना था, उसका बार-बार उसने मनन किया। तब बड़ा ही प्रसन्न होता हुआ वह भगवान् से बोला—भगवन्! निर्ग्रन्थों के प्रवचन मैंने सुने। अब उन पर विश्वास ला कर उनके अनुसार व्यवहार करने को भी मैं तैयार हूँ। भगवान् ने फर्माया जैसा भी तुम्हें रुचिकर हो, करो। यह सुनते ही 'अर्जुन' माली ने ईशान्य कोण में जा कर, स्वयमेव पञ्चमुष्टि लोचन किया। और, साधु के महाव्रत को धारण कर वह साधु बन गया। उसी दिन से, 'अर्जुन' अणगार ने, भगवान् को वन्दना कर के, जीवन पर्यन्त, अन्तर-रहित, बेले-बेले पारणा करने का अभिग्रह धारण कर लिया। और, यों वे बेले बेले पारणा करते हुए विचरण करने लगे।

मूलः—तए णं से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमण पारणयं सि पढ़म पोरिसीए सज्झायं करेइ, जहा गोयमसामी जाव अडइ। तए णं तं अज्जुणयं अणगारं रायगिहे णयरे उच्च जाव अडमाणं बहवे इत्थीओ य पुरिसा य डहरा य महल्लाय जुवाणाय एवं वयासी-इमे णं मे पियामारए, माया मारए, भागिणी मारए, भज्जमारए, पुत्तमारए, धूयामारए, सुण्हा-

मारए, इमेण मे अणणयरे सयण संबंधि परियणे मारिए त्ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसंति, अप्पेगइया हीलंति निंदंति खिसंति गरिहंति तज्जेंति तालेंति।

भावार्थः तत्पश्चात् उन 'अर्जुन' मुनि ने बेले के पारणे के दिन, प्रथम प्रहर में, स्वाध्याय किया। द्वितीय प्रहर में ध्यान किया। और तीसरे प्रहर में, गौतम स्वामी की भाँति गौचरी के लिए शहर में इधर-उधर फिरते रहते। उन अर्जुन मुनि को भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए, किसी दिन, राजगृह में अनेकों स्त्री-पुरुषों तथा बालकों और युवानों ने देखा। उन्हें देखते ही, अनेक प्रकार का वैर-बदला चुकाने की भावना ने उन लोगों के हृदयों में जोर पकड़ा। उन में से कोई यों कहने लगा, कि यह वही है, जिसने मेरे पिता, माता, बहिन, स्त्री, पुत्र, बेटी और पुत्र-वधु, आदि का अकारण ही संहार कर दिया था। इतना ही नहीं, अनेकों स्वजन-सम्बन्धियों को भी इसने असमय में ही परलोक को पठा दिया है। ऐसा कह कर—

मूलः—तए णं से अज्जुणए अणगारे तेहिं बहूहिं इत्थीहिय पुरिसेहिय डहरेहिय महल्लेहिय जुवाणएहिय आओसेज्जमाणे जाव तालेज्जमाणे तेसिं मणसा वि अपउस्समाणे सम्मं सहइ सम्मं खमइ तितिक्खइ अहियासेइ, सम्मं सहमाणे खममाणे तितिक्खमाणे अहियास-

माणे रायगिहे णयरे उच्चनीयमज्झिमकुलाइं अडमाणे जइ भत्तं लभइ तो पाणं ण लभइ, जइ पाणं तो भत्तं न लभइ, तए णं से अज्जुणए अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अणाइले अविसाई अपरितंत जोगी अडइ २ त्ता रायगिहाओ नयराओ पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे जहा गोयमसामी जाव पडिदंसेइ २ त्ता समणेणं भगवया महा वीरेणं अब्भणुण्णाए अमुच्छिए बिलामिव पण्णगभूएणं अप्पाणे णं तमाहारं आहारेइ।

भावार्थः-अनेकों ने तो वहीं का वहीं, अपने सौदे का मँहगा मूल्य चुका लेना चाहा। कई लोग, तदनुसार उन पर टूट पड़े। किसी के द्वारा उनका हीलना हुआ। तो किसी ने उनका आक्रोश किया। किसी ने केवल उनकी निन्दा और ताड़ना कर के ही अपने मन को समझा दिया। यों, प्रायः सभी ने अपना-अपना बैर-बदला, किसी-न-किसी भाँति चुका लेने की पूरी-पूरी चेष्टा, उस समय की। शरीर वही होने पर भी, आज उनकी भावनाओं में एक दम अन्तर था। थोड़े में, यूँ कहा जा सकता है, कि यदि पहले उनका सम्बन्ध जगत् के साथ तिरसठ का रहा होगा, तो आज वही छत्तीस हो गया था। अतः जो भी कुछ परिषह उन्हें उस समय पहुँचाया गया, हँसते-

हँसते उन ने सब कुछ सह लिया। ऐसी परिस्थिति में, आहार मिलता तो पानी नहीं, और पानी मिलता तो आहार नहीं। इस प्रकार समय पर रूखा-सूखा जैसा भी भोजन मिल जाता, उसे ही अदीन, अविमना, अकलुष, अक्षोभित, अविषादी, तनतनाहट आदि विक्षेप भावों से निरे असङ्ग रह कर लेते हुए, राजगृह से निकल वे गुण-शील बाग़ में आते और, वहाँ वे लाया हुआ भोजन भगवान् महावीर को श्रद्धा समेत दिखा, उन की आज्ञा प्राप्त होने पर, गृद्धिपन से रहित जिस प्रकार साँप बिल में सीधा घुसता है ठीक उसी प्रकार राग-द्वेष रहित हो, उस भोजन का सेवन कर अपना संयम निर्वाह करते।

मूलः—तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ णयराओ पडिनिक्खमइ २ त्ता बहिं जणवयविहारं विहरइ। तए णं से अज्जुणए अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपुण्णे छम्मासे सामण्णपरियागं पाउणइ अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ २ त्ता जस्सट्ठाए कीरई जाव सिद्धे।

भावार्थः-फिर, किसी समय जब श्रमण भगवान् महावीर, राजगृह से विहार कर, जनपद देश में विचरण कर धर्मोपदेश कर रहे थे, उसी अवधि में उन महानुभागी अर्जुन मुनि ने, प्रयत्न-पूर्वक ग्रहण किये हुए बेले-बेले के

पारणे के उस प्रधान तप से, अपनी आत्मा को निजानन्द में रमाते हुए, पूरे-पूरे छः महीने का चारित्र पाला। तथा अपने अन्तिम समय के पूरे पन्द्रह दिनों का सन्थारा कर, इन छः महीनों ही में, अर्जुन मुनि ने अपने सम्पूर्ण घनघाती कर्मों को चय कर डाला और मोक्ष प्राप्त किया। अर्थात् वे सिद्ध हो गये।

मूल:--उक्खेओ चउत्थस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समए णं रायगिहे णयरे, गुण सिलए चेइए, तत्थणं सेणिए राया, कासवे णामं गाहावई परि॰वसइ जहा मंकाई, सोलस्स वासा परियाओ, विपुले सिद्धे। एवं खेमए वि गाहावई, णवरं कागंदी णयरी, सोलस्स, वासा परियाओ, विपुले पव्वए सिद्धे। एवं, धितिहरे वि गाहा-वई, कागंदीए णयरीए सोलस वासा परियाओ जाव विपुले सिद्धे। एवं केलासे वि गाहावई, णवरं सागेए णयरे, वारस वासाइं परियाओ, विपुले सिद्धे। एवं हरिचंदणे वि गाहावई, सागेए णयरे, वारसवासा परियाओ विपुले सिद्धे। एवं वारवत्तए वि गाहावई, णवरं रायगिहे णयरे, बारसवासा परियाओ विपुले सिद्धे। एवं सुदंसणेवि गाहावई, णवरं वाणियगामे णयरे दुइपलासए चेइए, पंचवासा परियाओ, विपुले सिद्धे। एवं पुराणभद्दे वि गाहावइ वाणियगामे

णयरे पंचवासा परियाओ विपुले सिद्धे। एवं सुमणभद्दे वि गाहावई सावत्थीए णयरीए बहु-वासा परियाओ विपुले सिद्धे। एवं सुपइट्ठे वि गाहावई सावत्थीए णयरीए सत्तावीसं वासा परियाओ विपुले सिद्धे। एवं मेहे वि गाहावई रायगिहे णयरे बहूइं वासाइं परियाओ विपुले सिद्धे।

भावार्थः—जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्म स्वामी से कहा-भगवन् छठे वर्ग के तृतीय अध्याय में, भगवान् महावीर ने, जो फर्माया था, वह आप के श्री मुख से मैंने श्रवण किया। अब इसी छठे वर्ग के, चौथे अध्याय, में, भग-वान् ने जो भी कुछ फर्माया है। उसे हृदयङ्गम करने के लिए मेरा मन बड़ा ही छटपटा रहा है। अतः उसी का विवेचन अब कर मेरा मनोरथ पूरा कीजिए।

हे जम्बू! सुनो। उस समय जो राजगृह नगरी थी, उसके पास गुणशील नामक एक बाग सुशोभित था। उस समय, वहाँ श्रेणिक नामक एक राजा राज करते थे। उन दिनों वहाँ काश्यप नामक एक गाथापति रहता था। जिस प्रकार मङ्काई नामक गाथापति ने दीक्षा धारण की, ठीक वैसे ही काश्यप गाथापति ने समय पर वैराग्य पा, दीक्षा धारण की। सोलह वर्ष का चारित्र-पालन उन्होंने किया। और, अन्तिम समय में, विपुलगिरि पर सन्थारा ले अपने सारे कर्मों को नष्ट किया। पश्चात् वे मोक्ष में पधार गये। इसी तरह पाँचवें अध्याय में उल्लेख है, कि काकन्दी नगरी के निवासी, क्षेमक गाथापति ने भी दीक्षा लेकर सोलह वर्ष का चारित्र-पालन किया। तथा अन्तिम समय

में विपुल गिरि पर सन्थारा ले वे भी मुक्ति में गये। आगे छटे अध्याय में उसी काकन्दी के निवासी, धृति धर नामक गाथापति के सम्बन्ध में भी ठीक ऐसा ही कहा गया है। तब सातवें और आठवें अध्यायों में यह उल्लेख पाया जाता है कि-साकेत नगर-निवासी कैलाश और हरिचन्दन नामक गाथापतियों ने समय पर भगवान् महावीर का उपदेश सुन दीक्षा को अङ्गीकार किया। बारह वर्षों तक चरित्र का पालन कर, अपने अन्तिम समय में उसी विपुलगिरि पर सन्थारा ले मोक्ष-धाम को सिधार गये। आगे नौवें अध्याय में भी राजगृह के निवासी वारत्तक नामक गाथापति के सम्बन्ध में ठीक इसी प्रकार का वर्णन पाया जाता है। उसके दीक्षित होने, चारित्र-पालन करने तथा सन्थारा ले मोक्ष में जाने, आदि का वर्णन ठीक आठवें अध्याय ही के समान है। इसी प्रकार दशवें और ग्यारहवें अध्यायों में उल्लेख है, कि दुतिपलास उद्यान से सुशोभित वाणियाँ गाँव के निवासी सुदर्शन और पूर्णभद्र गाथापतियों ने भी दीक्षा ले पाँच वर्ष का चारित्र पालन किया। तथा अपने अन्तिम समय में उसी विपुल गिरि पर सन्थारा ले वे भी मोक्ष धाम को गये। आगे बारहवें तथा तेरहवें अध्यायों में वर्णन किया गया है, कि श्रावस्ति नगरी के निवासी क्रमशः सुमन भद्र और सुप्रतिष्ठ नामक गाथापतियों ने दीक्षा धारण की। सुमन-भद्र मुनि ने अनेक वर्षों तक चारित्र पाला। और सुप्रतिष्ठ मुनि ने सत्ताईस वर्ष तक चारित्र पाला। और, तब ये दोनों भी अपने अपने अन्तिम समय में, विपुलगिरि पर सन्थारा ले, मुक्ति में गये। आगे के चौदहवें अध्याय में राजगृह के निवासी मेघ नामक गाथापति का उल्लेख है। उन्हों ने भी समय पाकर, दीक्षा धारण की। अनेकों वर्षों

तक वे भी चारित्र का पालन करते रहे। और, अन्तिम समय में विपुलगिरि पर सन्थारा उन्हों ने लिया। तथा मुक्ति-धाम को गये। यो हे जम्बू! छठे वर्ग के चौदह अध्यायों का, थोड़े में, सार-रूप कथन यहाँ कह सुनाया।

मूलः—उक्खेओ पन्नरमस्स अज्झयणस्स एवं वयासी-एवं खलु जंबू तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरे नयरे, सिरीवणे उज्जाणे तत्थणं पोलासपुरेनयरे विजये नामं राया होत्था। तस्सणं विजयस्स रन्नो सिरीनामं देवी होत्था, वण्णओ। तस्सणं विजयस्स रन्नो पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते नामं कुमारे होत्था, सुकुमाले। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव सिरिवणे विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई जहा पण्णत्तीए जाव पोलासपुरे नयरे उच्च जाव अडइ।

भावार्थः-जम्बूस्वामी ने सुधर्मस्वामी से कहा-भगवन्! छठे वर्ग के चौदह अध्यायो में, जो वर्णन किया गया है, उसका श्रवण तथा मनन मैंने किया। अब अगले अध्याय में, जो भी कुछ भगवान् ने श्रीमुख से वर्णन किया है, उसे सुनाने की कृपा करें। हे जम्बू! सुन। उसी काल में एक पोलासपुर नामक नगर था। जो श्रीवन नामक एक परम मनोहर उद्यान से सुशोभित था। उन दिनों वहाँ विजय नामक राजा राजासीन थे। उसकी रानी का

नाम श्री देवी था। उन विजय राजा के पुत्र और श्री देवी का अङ्गज अइमुत्त-एवन्ता-नामक कुमार था। जो बड़ा ही सुकुमार तथा सुशील था। एक दिन भगवान् महावीर भव्य प्राणियों को धर्म का बोध करते-कराते हुए, उसी पोलासपुर नगर के बाहर 'श्रीवन' नामक बाग में पधार गए। भगवान् की भव-रोग-नाशिनी आज्ञा को प्राप्त कर उनके सबसे बड़े शिष्य, इन्द्रभूति, जिस प्रकार भगवतीजी सूत्र में वर्णन है, वैसे ही यहाँ पोलासपुर में, धनी तथा निर्धनी सभी घरों में भेदा-भेद के भावों का जरा भी विचार अपने हृदय में न रखते हुए भिक्षा के लिये जाते।

मूल:—इमं चणं अइमुत्ते कुमारे रहाए जाव विभूसिए बहूहिं दारए य दारियाहि य डिंभए हि य डिंभिया हि य कुमारए हि य कुमारिया हि य सद्धिं संपरिवुडे स या गिहाओ पडिनिक्खमइ २ त्ता जेणेव इंदट्ठाणे तेणेव उवागए, तेहिं बहूहिं दारएहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे अभिरममाणे २ विहरइ। तए णं भगवं गोयमे पोलासपुरे नगरे उच्चनीयं जाव अडमाणे इंदट्ठाणस्स अदूर सामंते णं वीईवयइ। तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूर सामंतेणं वीई वयमाणं पासइ २ त्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागए उवागइ त्ता भगवं गोयमं एवं वयासी-के

णं भंते ! तुब्भे ? किं वा अडह ।

भावार्थः एक दिन उसी समय अचानक अइमुत्त कुमार भी स्नान कर वस्त्रालङ्कारों से सुसज्जित बन, अनेक दारक-दारिका, डिम्भक-डिम्भिका, और कुमार एवं कुमारिकाओं के साथ, घर से निकल कर जहाँ इन्द्रस्थान अर्थात् खेलने या क्रीड़ा करने की जगह थी, उधर आ निकले । और उन सभी के साथ वे भी वहाँ खेलने लगे । भगवान् के सब से बड़े शिष्य श्री इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) जो पोलासपुर नगर में सभी धनी निर्धनियों के घर में भिक्षार्थ आये हुए थे, उस दिन उस क्रीड़ा-भूमि के निकट हो कर प्रस्थान कर रहे थे । उन दिव्य तपोधारी एवं तेजस्वी गौतम स्वामी को, अइमुत्त कुमार ने अपने क्रीड़ा-स्थल के बिल कुल समीप ही से निकलते हुए देखा । खेल को परे रख, वह उनके पास आया और उनसे उनका परिचय पूछने लगा । एवं उनके, यों इधर-उधर घर-घर फिरने का कारण जानना चाहा ।

मूलः—तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी-अम्हेणं देवाणुप्पिया समणा णिग्गंथा ईरिया समिया जाव बंभयारी उच्चनीय जाव अडामो । तएणं अतिमुत्ते कुमारे भगवं गोयमे एवं वयासी-एहणं भंते ! तुब्भे जा णं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमीति कट्टु

भगवं गोयमं अंगुलीए गेराहइ २ त्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागये। तए णं सा सिरी-देवी भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ २ त्ता हट्ठ तुट्ठ आसणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया, भगवं गोयमं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २त्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता विउलेणं असणपाण खादिम सादिमेणं पडिलाभेइ जाव पडिविसज्जेइ।

भावार्थः—इस पर गौतमस्वामी ने अइमुत्त कुमार को उत्तर में इस प्रकार कहा—हम पाँच महाव्रत, पाँच समिति आदि और नौ नियम-पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, श्रमण-निर्ग्रन्थ हैं। भिक्षार्थ इधर-उधर घरों में हम जा रहे हैं। स्वामीजी की इन बातों को श्रवण कर अइमुत्तकुमार बोला भगवन्! आप भिक्षा के लिए फिर रहे हैं। आइए चलिये आप को मैं भिक्षा दिलाता हूँ। ऐसा कह कर कुमार ने स्वामीजी की अँगुलियें पकड़ लीं। और, उन्हें अपने घर लाया। कुमार की माता श्रीदेवी ने श्रीगौतम स्वामी को अपने घर अतिथि के रूप में आये हुए देख कर, बड़ी प्रसन्नता प्रकट की तथा विधि-पूर्वक वन्दना कर, उच्च भावों के साथ, अति ही निर्मल अन्तःकरण से, अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य यह चारों ही प्रकार का आहार उन्हें वहराया।

मूलः-तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी-कहिणं भंते ! तुब्भे परिव-सह ? तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम धम्मा-यरीए धम्मोवएसए भगवं महावीरे आइगरे जाव संपाउकामे इहेव पोलासपुरस्स नयरस्स वहिया सिरिवणे उज्जाणे अहा पडिग्गहं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं जाव अप्पाणं भावे-माणे विहरइ, तत्थणं अम्हे परिवसामो । तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी-गच्छामि णं भंते ! अहं तुब्भेहिं सद्धिं समणं भगवं महावीरं पायवंदए । अहासुहं देवाणुप्पिया ! ।

भावार्थः-तत्पश्चात्, उन अइमुत्त कुमार ने गौतमस्वामी को यूँ निवेदन किया कि भगवन् ! आप कहां निवास करते हैं ? उत्तर में गौतम स्वामी ने कुमार से कहा-हे देवानुप्रिय ! धर्म का फिर से उत्थान करने वाले और मोक्षाभिलाषी, मेरे धर्माचार्य एवं धर्मोपदेशक भगवान् महावीर इसी पोलासपुर नगर के बाहर स्थित 'श्रीवन' नामक उद्यान में, सयम और तपस्या से आराधना करते हुए आजकल विराजते हैं । वहाँ, मैं भी, उनकी सेवामें रह कर काल-यापन कर रहा हूँ । यह सुन कर कुमार बोला-भगवन् ! मैं भी आपके साथ, उन परम प्रभु के

दर्शनार्थ अऊँ, तो क्या हानि है ? स्वामीजी ने फर्माया-कोई हानि नहीं । जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, निःशङ्क-भाव से तुम वैसा ही कर सकते हो ।"

मूलः—तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता वंदइ जाव पज्जुवासइ । तए णं भगवं गोयमे जेणेव समणे भगवं महावीरं तेणेव उवागए जाव पडिदंसेइ २ त्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तएणं समणे भगवं महावीरं अइमुत्तस्स कुमारस्स तीसिय धम्मकहा । तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जं णवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पव्वयामि । अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंध करेह ।

भावार्थः तब इन अइमुत्त कुमारने, गौतम स्वामी के साथ, भगवान् महावीर के पास, आकर उन्हें विधि-विधान के साथ वन्दना की । इतना ही कर के कुमार चुप न रहा । वह उनकी सेवा में भी संलग्न हुआ । इधर

गौतम स्वामी ने भी भगवान् के पास आ उन्हें आहार दिखाया। फिर भोजन ग्रहण कर लेने पर, संयम और तपस्या में, अपनी आत्मा को संलग्न किया। उधर भगवान् महावीर अइमुत्त कुमार को धर्मोपदेश देने लगे। धर्मोपदेश श्रवण कर, कुमार का हृदय बाँसों उछल पड़ा। उसे हृदयङ्गम कर वह भगवान् से यूँ बोला—भगवन्! मैं माता-पिता से पूछ कर आऊँगा और आपसे दीक्षा ग्रहण करूँगा। भगवान् ने फ़माया-हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार तुम्हें सुख प्राप्त हो, उस प्रकार करो! परन्तु किसी भी शुभ काम में, किसी भी प्रकार का विलम्ब करना ठीक नहीं।

मूलः—तए णं से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए जाव पव्वत्तित्तए अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—बाले सि ताव तुमं पुत्ता! असंबुद्धे सि तुमं पुत्ता! किं नं तुमं जाणासि धम्मं? तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—एवं खलु अहं अम्मायाओ! जं चेव जाणामि तं चेव न याणामि जं चेव न याणामि तं चेव जाणामि। तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—कहं नं तुमं पुत्ता! जं चेव जाणासि जाव तं चेव जाणासि?

भावार्थः-तदनन्तर, कुमार अइमुत्त अपने माता-पिता के पास आकर बोला-पूज्य माता-पिताजी ! मैंने आज प्रभु का साक्षात्कार किया और उन्होंने मुझे सदुपदेश दिया, जिससे मेरा हृदय संसार से विरक्त हो चुका है। कृपा-कर, अब आप मुझे आज्ञा प्रदान करें । आप की आज्ञा प्राप्त होने पर मैं दीक्षा ग्रहण करूंगा । कुमार की बात सुन कर माता-पिता बोले-पुत्र ! तुम अभी बालक हो, अतत्त्वज्ञ हो। धर्म के मर्म को तुम अभी क्या जानते हो ? इस पर कुमार बोला-मेरे परम पूज्य माताजी एवं पिता श्री, जिस को मैं जानता हूँ । उसी को मैं नहीं जानता। और जिसे मैं नहीं जानता हूँ, उसी को मैं जानता हूँ। कुमार की इस प्रकार की पेचीदा बातों को सुनकर माता-पिता चकित हो गये। वे सोचने लगे कि ऐसी छोटी अवस्था का कुमार, यह बोल क्या रहा है ! कुमार से माता-पिता बोले-पुत्र ! तुमने यह कौनसी बात कही ? हम तो इस में कुछ भी समझ न पाये। बेटा ! अभी ! और, ऐसी ऐसी पेचीदा बातें !!!

मूलः-तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी-जाणामि अहं अम्मताओ ! जहा जाएणं अवस्समरियव्वं न जाणामि अहं अम्मताओ ! काहेवा कहिं वा कहं वा केचिरेण वा ? न जाणामि अहं अम्मताओ! केहिं कम्माययणेहिं जीवा नेरइय तिरिक्ख जोणि मणुस्सदेवेसु उव वज्जंति, जाणामि णं अम्मताओ ! जहा सएहिं कम्मा-

याणेहिं जीवा नेरइय जाव उववज्जंति, एवं खलु अहं अम्मताओ! जं चेव जाणामि तं चेव न याणामि, जं चेव न याणामि तं चेव जाणामि, इच्छामिणं अम्मताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए जाव पव्वइत्तए। तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं आघवणेहिं तं इच्छामो ते जाया ! एग दिवसमवि राज सिरिंपासेत्तए तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मा पिउवयणमणुयत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ, अभिसेओ जहा महाबलस्स निक्खमेणं जाव सामाइय माइयाइं अहिज्जइ बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं गुणरयणं जाव विपुले सिद्धे।

भावार्थः—माता-पिता के पूछने पर, कुमारने उन्हें यूँ कहा-माता-पिताओ ! मैं जानता हूँ, कि जो जन्मा है, वह एक न-एक दिन अवश्य मरेगा; परन्तु यह मैं नहीं जानता, कि किस समय, कहाँ, कैसे, और कितने समय के पश्चात् वह मरेगा ! पुनः मेरे प्राण-पूज्य माता-पिताओ ! मैं यह नहीं जानता, कि किन कर्मों के द्वारा जीव नर्क, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव-गति में जन्म धारण कहता है, पर हाँ, इतना तो मैं अवश्य ही जानता हूँ, कि जैसे भी जिस के कर्म होते हैं उसी के अनुसार, वे नर्कादि में जा कर उत्पन्न होते हैं। अतः अब तो आप मेरी बात को अवश्य ही समझ गये

होंगे। मैंने इसी लिए कहा था कि–जो मैं जानता हूँ, उसको मैं नहीं जानता और जिसे मैं नहीं जानता हूँ, उसे मैं जानता हूँ। पूजनीय! अब तो बहुत हो गई। आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मेरी तो अब दीक्षा ग्रहण करने ही की प्रबल इच्छा है। इस पर फिर भी उस के माता-पिताने उसे अनेकों प्रकार के अनुकूल तथा प्रतिकूल वचनों से समझाने की भरपूर चेष्टा की। परन्तु भगवान् के क्षणभर के सत्सङ्ग मात्र से, कुमार के शुभ कर्मों का उदय आज हो आया था। अतः वह तो टस से मस भी न हुआ। अब उस का निश्चय अटल था। तब तो उसके माता-पिता ने उस से, अन्त में, यूँ कहा–पुत्र! कम से कम यह बात तो मानलो, कि एक दिन का राज ही करते हुए हम तुम्हें अपनी आखों देख लें। कुमार ने अपनी मौन के द्वारा अपने माता-पिता के प्रस्ताव का अनुमोदन और समर्थन किया। अपने कुमार के इन भावों को देख, उनका कण्ठ गद्गद् हो गया। और शरीर रोमाञ्चित। फिर उन्हों ने कुमार का विधान के साथ राज्याभिषेक किया। कुमार ने राज्य की बागडोर को अपने हाथ में ले कर, सर्व प्रथम अपने दीक्षोत्सव ही की आज्ञा दी। तब महाबल की भांति कुमार ने भी दीक्षा धारण कर, सामायिक से ले कर ग्यारह अङ्गों का सम्पूर्ण मथन कर डाला। उन्हों ने गुण रत्न संवत्सर, आदि तपस्याएँ भी खूब ही कीं। अनेकों वर्षों तक चारित्र-पालन किया। अन्तिम समय में, विपुलगिरि पर सन्थारा ले, मोक्ष-धाम में वे जा विराजे।

मूल:–उक्खेवओ सोलमस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समए

एवं जंबू ! समणेणं जाव छट्ठमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पएणत्ते।

एणं वाणारसीए णयरीए काम महावणे चेइए, तत्थणं वाणारसीइ अलक्खे णामं राया होत्था। तेणं कालेणं तेणं समए णं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ परिसा निग्गया तए णं अलक्खे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ तुट्ठ जहा कूणिए जाव पज्जुवासइ, धम्मकहा। तए णं से अलक्खे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए जहा उदायणे तहा णिक्खंते, णवरं जेट्ठ पुत्तं रज्जे अहिसिंचइ, एक्कारस अंगा, बहूवासा परियाओ जाव विपुले सिद्धे

भावार्थः-श्री जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्म स्वामी से कहा-भगवन् ! छटे वर्ग के पन्द्रहवें अध्याय में, जो वर्णन था, वह आपने कृपा कर के मुझे कह सुनाया। उसका ध्यान, धारणा और निधि-ध्यासन-पूर्वक मैंने मनन भी किया। आगे इसी वर्ग के सोलहवें अध्याय में वर्णन है, उसे जानने की मेरी उदग्र इच्छा है। अस्तुः। उसी को फर्माने की अनुकम्पा आप अत्र मुझ पर दिखाइए। जम्बू ! सुनो ? भगवान् महावीर के समय में काम-महावन नामक बाग से सुशोभित एक वाणारसी नगरी थी। उस समय वहाँ 'अलच्च' नामक एक राजा अपने राज का सञ्चालन करता था। उसी अवधि में भगवान् महावीर छोटे-बड़े सभी गावों में धर्मोपदेश देते हुए वहाँ पधारे। भगवान् की पधरा-

वनी उसी बाग में हुई। सारे नगर में, बिजली की भाँति, आपके शुभागमन का सुसंवाद पहुँच गया। अबतो आप के दर्शन करने तथा व्याख्यान श्रवण करने के लिए जनता नगरी की दशों दिशाओं से सिमिट सिमिट कर आने लगी। प्रभु के पदार्पण का यह शुभ सन्देश राजा अलक्ष को भी एक दिन मिला। सन्देश के श्रवण करते ही, राजा बड़ा ही प्रसन्न हुआ। और कौणिक की तरह बड़े ठाट-पाट से, एक दिन प्रभु की सेवा में आ उपस्थित हुआ। भगवान् ने उसे भी धर्मोपदेश सुनाया। उपदेश श्रवण कर राजा अलक्ष ने भगवान् महावीर के पास उदाई राजा की तरह, दीक्षा धारण करली। अन्तर केवल यही है, कि इन्हों ने अपने बड़े पुत्र के सिर-कन्धों राज का सारा भार रक्खा। अलक्ष मुनि ने ग्यारह अङ्ग तक का ज्ञानाभ्यास किया तदनन्तर, अनेकों वर्षों तक चारित्र-पालन कर अन्तिम समय में विपुलगिरि पर सन्थारा ले, मुक्ति-धाम को वे सिधारे। जम्बू! अन्तगड़ के छटे वर्ग में इस प्रकार भगवान् महावीर ने वर्णन किया है।

❀ इति षष्टमो वर्ग ❀



सप्तमो–वर्गः

मूलः–जइणं भंते ! सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेव श्रो जाव तेरस अज्झयणा पण्णत्ता। तंजहा–नंदा तह नंदवई नंदोत्तर नंदसेणिया चेव । मरुया सुमरुया महमरुया मरुदेवा य अट्ठमा ॥ १ ॥ भद्दाय सुभद्दाय सुजाया सुमणातिया । भूयदिन्नाय बोद्धव्वा सेणिय भज्जाण नामाइं । जइणं भंते ! तेरस अज्झयणा पन्नत्ता पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुण सिलए चेइए सेणिए राया,वण्णश्रो । तस्सणं सेणियस्स रण्णो नंदा नामं देवी होत्था वण्णश्रो । सामी समोसढे परिसा निग्गया । तए णं सा नंदा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जाव हट्ठ तुट्ठा कोडुंबिय पुरिसे सद्दावइ २ त्ता जाणं जहा पउमावइ जाव एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता वीसं वासाइं परियाश्रो जाव सिद्धा । एवं तेरस वि देवीश्रो णंदागमेण

ऐयव्वाओ णिक्खेओ।

भावार्थः-श्री जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्म स्वामी से कहा-भगवन्! छठे वर्ग में, जो वर्णन था, वह मैंने सुना। आगे सातवें वर्ग में, जो वर्णन है, अब उसी को कृपा कर के फर्मावें। जम्बू! सुनों। सातवें वर्ग में कुल तेरह अध्याय हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं:-(१) नन्दा, (२) नन्दमति, (३) नन्दोत्तरा, (४) नन्द सेना, (५) महया, (६) सुमरुत्ता, (७) महा मरुत्ता (८) मरुदेवी, (६) भद्र, (१०) सुभद्रा, (११) सुजाता, (१२) सुमति, और (१३) भूत दिन्ना। यह तेरह ही, राजा श्रेणिक की रानियाँ हैं। इन तेरह रानियों में से एक-एक रानी का एक-एक अध्याय में, वर्णन है। यों उनके नाम से ये तेरह अध्याय हैं। भगवन्! सातवें वर्ग के, इन तेरह अध्यायों में से, प्रथम के अध्याय में किस विषय का वर्णन है? जम्बू! सुनो! भगवान् महावीर की मौजूदगी के समय में, राजगृह नामक एक नगरी, गुणशील नामक एक बाग से सुशोभित थी। उस समय वहां राजा श्रेणिक का शासन था। उस श्रेणिक राजा के नन्दा नाम की एक महारानी थी। उसी अर्से में, भगवान् महावीर धर्मोपदेश करते-करते एक बार वहाँ पधारे। जनता भगवान् के पदार्पण की सूचना पाते ही, दर्शनार्थ दौड़ पड़ी। राजा श्रेणिक की महारानी नन्दा को जब यह सूचना मिली, तो वह भी अति ही प्रसन्न हुई। उसने अपने किसी एक कौटुम्बिक पुरुष को बुला कर रथ तैयार करवा मँगाया। तब रथ पर सवार हो वह भी भगवान् के दर्शनार्थ गई। भगवान् का सदुपदेश श्रवण कर उसे संसार के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। और वैराग्य उसके हृदय में जोर पकड़ गया।

बस, फिर क्या था । उसने राजा श्रेणिक की आज्ञा प्राप्त कर, पद्मावती रानी के समान दीक्षा धारण करली । ग्यारह अङ्गों तक उसने शास्त्रों का अध्ययन किया । और, बीस वर्ष चारित्र-पालन । अन्तिम समय में सन्थारा ले, वे मुक्ति में गई । इसी प्रकार, अवशेष रानियों का वर्णन भी समझना चाहिए । सभी रानियाँ समय-समय पर दीक्षा धारण कर, अन्त में मोक्ष में पहुँची । एक-एक रानी का एक-एक अध्याय, यों पूरे तेरह अध्यायों का वर्णन पाठक-वृन्द समझें ।

❀ इति सप्तमो वर्ग ❀



अष्टमो-वर्ग

मूलः—जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगड़ दसाणं सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते । अट्ठमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगड़दसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगड़दसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—काली सुकाली महाकाली कण्हा सुकण्हा महाकण्हा वीरकण्हा य बोद्धव्वा रामकण्हा तहेव य ॥ १ ॥ पिउसेणकण्हा नवमी दसमी महासेण कण्हाय । जइणं भंते ! अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढ़मस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

भावार्थः श्री जम्बूस्वामी ने सुधर्मस्वामी से कहा-भगवन् ! श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी, जो मुक्ति में पधार गये, उन पुरुषों ने आठवें अङ्ग श्री अन्तगढ़ सूत्र के सातवें वर्ग में जो वर्णन फर्माया, वह आप से मैंने सुना । परन्तु

भगवन् ! अन्तगढ़ के आठवें वर्ग में भगवान् ने क्या फर्माया है, कृपा कर उसे फर्मावें। जम्बू ! सुनो। आठवें अङ्ग श्री अन्तगढ-सूत्र के आठवें वर्ग में कुल दस अध्याय हैं। वे इस प्रकार हैं:—(१) काली, (२) सुकाली, (३) महा-काली, (४) कृष्णा, (५) सुकृष्णा, (६) महाकृष्णा, (७) वीरकृष्णा, (८) राम कृष्णा, (९) पितृसेन कृष्णा, और (१०) महासेन कृष्णा। यों दसों ही रानियों के नाम से दस अध्याय हैं। भगवन् ! इन दस अध्यायों में से प्रथम अध्याय में क्या वर्णन है ?

मूलः—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं नयरी होत्था, पुराणभद्दे चेइए, तत्थणं चंपाए नयरीए कोणिए राया, वरणओ। तत्थणं चंपाए णयरीए सेणियस्स रराणो भज्जा, कोणियस्स रराणो चुल्लमाउया काली नामं देवी होत्था, वरणओ। जहा नंदा जाव सामइयमाइयाइं एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ छट्ठट्ठमेहिं जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

भावार्थः-हे जम्बू ! सुनो। भगवान् महावीर के विद्यमान् समय में, पूर्ण-भद्र नामक, मनोहर उद्यान से सुशो-भित, 'चम्पा' नामक एक परम सुन्दर नगरी थी। वहाँ उस समय कौणिक राजा राज कर रहा था। उसी के राज-घराने में राजा श्रेणिक की तो पत्नी, और राजा कौणिक की छोटी माता 'काली' नामक एक रानी थी।

उन्हीं दिनों भगवान् महावीर विचरते-विचरते एक बार वहाँ पधारे। काली रानी ने भगवान् का उपदेश श्रवण कर नन्दा रानी की भाँति दीक्षा ग्रहण की। सामाइक से लेकर ग्यारह अङ्ग पर्यन्त का ज्ञानाभ्यास उन्होंने किया। तपस्या करने में भी कुछ कमी उन्होंने न रक्खी। कभी वे उपवास करती थीं तो कभी बेला और कभी तेला। यों, नाना भाँति की तपस्या से अपनी आत्मा को आराधित करने मे तत्पर हो कर, वे इधर-उधर विचरने लगीं।

मूलः—तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्ज चंदणा अज्जा तेणेव उवागया उवागच्छित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवं उवसंपज्जेत्ताणं विहरेत्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंध करेह। तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तंजहा—

भावार्थः—एक दिन, वे 'काली' नामक साध्वी, श्रीमती सतीजी श्री चन्दनबाला आर्याजी के पास आकर बोलीं-हे महाभागा! मेरी ऐसी इच्छा है, कि आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर, मैं रत्नावलि नामक तपस्या की आराधना करूं। श्रीमती चन्दनबालाजी ने कहा-हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हें, सुख प्राप्त हो, वैसा ही तुम करो। तपस्या करने में तनिक भी विलम्ब न करो। इस प्रकार अपनी गुराणीजी की आज्ञा प्राप्त कर, वे 'काली' नामक

साध्वी उसी रत्नावलि नामक तपस्या को करने में संलग्न हो गइ। वह 'रत्नावलि-तप' इस प्रकार है:-

२ २ २
१ २ ३ | २ ० २ | १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६
२ २ २

रत्नावलि-तप

२ २ २
१ २ ३ | २ ० २ | १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६
२ २ २

।२।२।
।२।२।२।
।२।२।२।२।
।२।२।२।२।२।
।२।२।२।२।२।२।
।२।२।२।२।२।
।२।२।२।२।
।२।२।२।
।४।२।

मूल:—चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठ छट्ठाइं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ२त्ता सव्वकाम गुणियं

पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारस्समं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता वीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता बावीसइमं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२ त्ता चउवीसमं करेइ२ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता छव्वीसइमं करेइ २ त्ता सब्वकामगुणियं पारेइ २त्ता अट्ठावीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता तीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२त्ता बत्तीसइमं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२त्ता चोत्तीसइमं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोत्तीसं छट्ठाइं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चोत्तीसइमं करेइ२ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बत्तीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता तीसं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२ त्ता अट्ठावीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छव्वीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणिय पारेइ २ त्ता चउवीसइमं करेइ२ त्ता सव्व-कामगुणिय पारेइ २ त्ता बावीसइमं करेइ करेइ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता वीसइमं

करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ २ त्ता बारसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठ छट्ठाइं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्व काम गुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ। एवं खलु एसा रयणावलीए तवो कम्मस्स पढमा परिवाडी एगेणं संवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं अहासुत्ता जाव आराहिया भवइ।

भावार्थः-उन काली नामक आर्याजी ने, रत्नावलि तपस्या करने के लिए उपवास किया। पारणा करके बेला किया। पारणा करके तेला किया। पारणा करके आठ बेले किये। पारणा करके उपवास किया। पारणा करके बेला किया। पारणा करके तेला किया! यों अन्तर रहित चोला किया। पाँच किये। छः किये। सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह,

बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह और सोलह किये। फिर चौंतीस बेले किये। पारणा करके सोलह दिन की तपश्चर्या की। पारणा करके पन्द्रह दिन की तपस्या की। यों, चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात, छः, पाँच, चार, तीन, दो और उपवास किया। पारणा कर के आठ बेले किये। पारणा करके तेला किया। पारणा करके बेला किया। पारणा करके उपवास किया। फिर पारणा किया। इस प्रकार, उन्होंने 'रत्नावलि-तप' की एक परिपाटी (लड़ी) की। ऐसी तपस्या की एक बार लड़ी करने में पूरा-पूरा एक वर्ष, तीन महीने और बावीस दिन लगते हैं। जिस प्रकार सूत्र में विधि बताई है, उसी तरह इन आर्याजी ने इस की आराधना की। ऐसी एक परिपाटी करने में तीन सौ चौरासी दिन उपवास के और अठ्यासी दिन पारणे के, यों सब चार सौ बहत्तर दिन होते हैं।

मूलः—तयाणंतरं चणं दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ २ त्ता विगइवज्जं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता विगइवज्जं पारेइ २ त्ता एवं जहा पढमाए वि, णवरं सव्व पारणए विगइवज्जं पारेइ जाव आराहिया भवइ। तयाणंतरं चणं तच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ २ त्ता अलेवाडं पारेइ सेसं तहेव। एवं चउत्था परिवाडी नवरं सव्व पारणए आयंबिलं पारेइ, सेसं तंचेव। पढमंमि सव्वकामं, पारणयं विइयए विगइवज्जं। ततियं मि अलेवाडं आयंबिल

यो चउत्थं मि ॥ तएणं सा काली अज्जा रयणावली तवो कम्मं पंचहिं संवच्छरेहिं दोहि य मासेहिं अट्ठावीसाए य दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहेत्ता जेणेव अज्ज चंदणा अज्जा तेणेव उवागया उवागच्छित्ता अज्ज चंदणं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता बहूहिं चउत्थं जाव अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

भावार्थः—तत्पश्चात् उन 'काली' नामक साध्वीजी ने इस 'रत्नावलि तपस्या' की एक परिपाटी—शृङ्खला कर ली। और उसके साथ ही, वे दूसरी परिपाटी- शृङ्खला करने को उद्यत हुई। प्रथम, उपवास किया। उपवास के पारणे में, विगय, दूध, दही, मिष्टान्न, तेल, घी, आदि का खाना एक-दम बन्द कर दिया। इस प्रकार उपवास का पारणा कर उन ने बेला किया। पारणे में वही विगय बन्द रक्खी। इसी तरह, तेला किया। पारणा करके आठ बेले किये। पारणा करके उपवास किया। बेला किया। तेला किया। यूँ सोलह तक किया। फिर चौंतीस बेले किये। पारणा करके सोलह किये। फिर पन्द्रह, चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात, छः पाँच, चार तीन, दो, और उपवास किया। पारणा करके आठ बेले किये। पारणा करके तेला किया। बेला किया और उपवास किया। सभी पारणों में विगय बन्द रक्खी। जिस प्रकार प्रथम परिपाटी की, उसी तरह दूसरी भी की। इन में विगय तो खाई ही नहीं गई। साथ ही में, रत्नावलि की तीसरी लड़ी भी इसी तरह की। यहाँ तक, कि विगय बन्द रखने

के साथ ही साथ, घी से चुपड़ी हुई रोटी तक न खाई । अर्थात् लेपवाली वस्तुओं का खाना बिलकुल ही छोड़ दिया । तीसरी परिपाटी के पूर्ण होते ही, चौथी परिपाटी भी इसी तरह की । पर इसके पारणे के दिन तो, फिर भी आयम्बिल-लूखी रोटी और वह भी धोवन या ठण्डे किये हुए गर्म जल में भिगो कर खा लेती थी । इस प्रकार वे 'काली' नामक साध्वी जी 'रत्नावलि तपस्या' करते हुए पूरे-पूरे पाँच वर्ष, दो महीने और अट्ठाइस दिनों में, जैसे सूत्र में विधि बतलाई गई है, उसी प्रकार इस तपस्या की आराधना कर, अपनी गुराणी श्री चन्दनबाला आर्याजी के पास वे आई । और, उन्हें विधि-पूर्वक वन्दना कर फिर भी फुटकर उपवास, बेले, तेले, की तपस्या करती हुई, अपनी आत्मा को पवित्र वे करती रहीं ।

मूलः-तएणं सा काली अज्जा तेणं ओरालेणं जाव धमणिसंतया जायायावि होत्था, से जहा इंगाल सगडी वा जाव सुहुय हुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णा तवेणं तएणं तव-तेय सिरीए अईव उवसोभे माणी चिट्ठइ ।

भावार्थः-तदनन्तर, उन 'काली' नामक आर्याजी का शरीर इस प्रकार की प्रधान तपस्या करने से, प्रायः माँस और खून से रहित हो गया । केवल अस्थि-पञ्जर का ढाँचा मात्र वे रह गई । उठते-बैठते, उनकी हड्डियाँ कड़-कड़ शब्द करने लगीं । और उनके शरीर में चहुँ ओर नसों का जाल-सा दिखाई देने लगा । वे अपने अयुष्य-

भूख-जीवन ही से जीवित थीं। और चलती-फिरतीं थीं। वे इतनी कृश हो गई थीं, कि बोलना तो दूर रहा पर, बोलने के विचार-मात्र से ही उन्हें कष्ट प्राप्त होता था। जिस प्रकार सूखे काष्ट, सूखे पत्ते या कोयले की भरी हुई गाड़ी चलते समय आवाज करती है, उसी तरह उनकी हड्डियां भी उठते-बैठते, चलते-फिरते आवाज करने लगी थीं। जो भी उन साध्वी के शरीर का मॉस एवं रुधिर प्रायः सूख गया था, तब भी तप और तेज रूपी लक्ष्मी से वे दिन-दूनी और रात-चौगुनी सम्पन्न हो कर शोभा को प्राप्त होती जा रही थीं।

मूलः-तएणं तीसे कालीए अज्जाए अएणया कयाइ पुव्वरत्तावरत्त काले अयं अज्झत्थिए जहा खंदयस्स चिंता जहा जाव अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार परक्कमे सद्धाधिई संवेगे ताव ताव मे सेयं कल्लं जाव जलंते अज्ज चंदणं अज्जं आपुच्छित्ता अज्ज चंदणाए अज्जाए अब्भणुन्नायाए समाणीए संलेहणा झूसणा आराहणा भत्तपाण पडियाइक्खे कालं अणवकंखमाणे विहरेत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता कल्लं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामिणं अज्जो! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा जाव विहरेत्तए अहा-

सुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह। तओ काली अज्जा अज्ज चंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा झूसिया जाव विहरइ। सा काली अज्जा अज्ज चंदणाए अंतिए सामाइय-माइयाइं एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुन्नाइं अट्ठ संवच्छाराइं सामण्णपरियागं पाउ-णित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता जस्सट्ठा कीरइ जाव चरिमुस्सासनीसासेहिं सिद्धा।

भावार्थः तत्पश्चात्, उन 'काली' आर्याजी को, एक रोज, पिछली रात्रि के समय खन्दक की भाँति ऐसे विचार उत्पन्न हुए, कि मेरा शरीर तपस्या से इस प्रकार कृश हो गया, तब भी मुझ में उत्थान, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, श्रद्धा, धृति संवेग और शक्ति आदि अभी तक विद्यमान् हैं। अतएव कल सूर्योदय होते ही मुझे गुराणी श्रीमती चन्दनबालाजी से पूछ कर, आहार-पानी का जीवनभर के लिए परित्याग कर लेना चाहिए। तथा सन्थारा करके, जीवन एवं मृत्यु की आशा-रहित होकर, विचरण करना चाहिए। ऐसा विचार कर, सूर्योदय होते ही होते, वे 'काली' नामक आर्याजी, श्रीमती चन्दनबालाजी के पास आईं। और उन्हें वन्दना कर के बोलीं-महाभागा ! मेरी इच्छा है, कि आप की आज्ञा प्राप्त होने पर, मैं सन्थारा कर के रहूँ। उत्तर में श्रीमती चन्दनबाला आर्याजी

ने फर्माया—हे देवानुप्रिये ! जो तुम्हें सुखकर हो वैसा ही करो । इसमें विलम्ब मत करो । बस, इस प्रकार आज्ञा हो जाने पर, उन्होंने सन्थारा कर लिया । इन साध्वीजी ने अपनी गुराणी श्रीमती चन्दनबालाजी के समीप सामाइक से लेकर ग्यारह अङ्गों तक का सम्पूर्ण ज्ञानाभ्यास किया । पूरे-पूरे आठ वर्ष तक चारित्र पाला । और, एक महीने के सन्थारे में सम्पूर्ण घनघाती कर्मों का एकान्त निकाश्चन कर, अन्तिम श्वासोश्वास के पश्चात् वे सिद्धगति-मोक्ष मे पहुँचीं ।

मूलः—उक्खेवओ बियं अज्झयणस्स । एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समए णं चंपा णाम णयरी, पुराणभद्दे चेइए, कोणिए राया, तत्थणं सेणियस्स रराणो भज्जा कोणियस्स रराणो चुल्लमाउया सुकाली नाम देवी होत्था । जहा काली तहा सुकाली वि णिक्खंता जाव बहूहिं चउत्थ अप्पाणं भावे माणे विहरइ । तए णं सा सुकाली अज्जा अराणया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा जाव इच्छामि णं अज्जो ! तुब्भेहिं अब्भणुराणाया समाणी कणगावली तवोकम्मं उवसंपाज्जित्ताणं विहरेत्तए। एवं जहा रयणावली तहा कणगावली वि णवरं तिसु ठाणेसु अट्ठमाइं करेइ जहा रयणावलीए छट्ठाइं एकाए परिवाडिए

संवच्छरो पंच मासा अट्ठारस दिवसा, सेसं तहेव । नव वासा परियाओ जाव सिद्धा ।

भावार्थः-जम्बू स्वामी ने सुधर्म स्वामी से कहा--भगवन् ! मैंने आपके श्री-मुख से प्रथम अध्याय श्रवण कर लि।ा । आगे दूसरे अध्याय में जो वर्णन है, कृपा कर के अब उसे फरमावें । जम्बू ! सुनो । उस काल में, वही 'चम्पा' नाम की एक नगरी थी । वहां कौणिक राजा राज करता था । श्रेणिक राजा की पत्नी और कौणिक राजा की लघु-माता, सुकाली नाम की एक रानी थी । उन दिनों, वहां एक बार भगवान् महावीर स्वामी पधारे । जि। प्रकार, पहले काली रानी ने दीक्षा धारण की, उसी प्रकार इन सुकाली महारानी ने भी दीक्षा ग्रहण की । एक दिन यही सुकाली नामक साध्वी, श्रीमती चन्दनबाला आर्याजी के पास आकर, यों बोली-हे महाभागा आर्याजी ! आपकी आज्ञा होने के पश्चात्, मेरी इच्छा है, कि 'कनकावलि' नामक तपस्या की आराधना मैं करूँ । उ।र में उन्होंने कहा--जो तुम्हें सुखकर प्रतीत हो, वैसा तुम करो । तदनन्तर, उन सुकाली आर्याजी ने, जिस प्र।ार काली आर्याजी ने 'रत्नावलि' तपस्या की थी, उसी प्रकार इन्होंने भी 'कनकावलि' नामक तपस्या की। प।न्तु जहाँ रत्नावलि में तीन जगह बेले किये । यहाँ उस जगह तेले किये । इस 'कनकावलि' की एक परिपाटी शृङ्खला करने मे पूरा-पूरा एक वर्ष, पाँच महीने और बारह दिन लगते हैं । इस में अठ्यासी दिन पारणे के, और ए। वर्ष दो महीने एव चौदह दिन तपस्या के होते हैं । यों, चारों ही परिपाटी करने में पूरे-पूरे पाँच वर्ष, नौ महीने औ।र अट्ठारह दिन लग जाते हैं । वह 'कनकावलि' तपस्या इस प्रकार है:—

कनकावलि-तप

| ३ ३ ३ |
१ २ ३ | ३ ० ३ | १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६
| ३ ३ ३ |

| ३ ३ ३ |
१ २ ३ | ३ ० ३ | १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६
| ३ ३ ३ |

— ३ —
— ३ — ३ —
— ३ — ३ — ३ —
— ३ — ३ — ३ — ३ —
३ — ३ — ३ — ३ — ३ — ३
— ३ — ३ — ३ — ३ — ३ —
— ३ — ३ — ३ — ३ —
— ३ — ३ — ३ —
— ३ — ३ —
— ३ —

इस तपस्या के समाप्त होने पर, फिर भी कई तपस्याएँ उन्होंने कीं। जिससे उन का शरीर सूख कर काँटा बन गया। अन्तिम दिनों में सन्थारा कर नौ वर्ष का चारित्र पाल कर ये भी मोक्ष में पहुँचीं।

मूल:—एवं महाकाली वि णवरं खुड्डागं सीह निक्कीलियं तवो कम्मं उवसंपाज्जित्ताणं विहरइ, तं जहा—चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं

करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसम्मं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेई २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ२ त्ता सोलसमं करेइ२त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ पारेइ त्ता बीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ२त्ता अट्ठारसमं करेइ २त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ२ त्ता बीस-इमं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारस्समं करेइ करेइ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं

करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता वारसमं करेइ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगु-णियं पारेइ २ त्ता तहेव चत्तारि परिवाडीओ, एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्तय दिवसा, चउण्हं दो वरिसा अट्ठावीसा य दिवसा जाव सिद्धा। एवं कण्हा वि णवरं महालयं सीहि-णिक्कीलियं तवो कम्मं जहेव खुड्डागं, णवरं चोत्तीस इमं जावे णयव्वं तहेव ऊसारेयव्वं, एक्काए वरिसं छम्मासा अट्ठारस य दिवसा, चउण्हं छ वरिसा दो मासा बारसय अहो-रत्ता, सेसं जहा कालीए जाव सिद्धा।

भावार्थः-हे जम्बू ! इस वर्ग के तीसरे अध्याय में वर्णन है, कि चम्पा-नगरी के श्रेणिक राजा की पत्नी

और कोणिक की छोटी माता महाकाली रानी ने भी सुकाली रानी की तरह दीक्षा धारण की । इन महा काली नामक साध्वीजी ने ' लघुसिंह निष्क्रीड़ित ' नामक तप किया । वह इस प्रकार है:- सर्वप्रथम उपवास किया । पारणा करके बेला किया । पारणा कर के उपवास किया । पारणा कर के तेला किया । यों बेला, चौला, तेला, पँचोला, चौला छः पाँच, सात, छः, आठ सात, नौ, आठ, नौ, सात, आठ सात, पाँच, छः चौला, पँचौला, तेला, चोला बेला, तेला, उपवास, बेला, और उपवास किया । इस प्रकार ' लघुसिंह निष्क्रीडित ' नामक तप की एक परिपाटी की । जिसमें तैंतीस दिन तो पारणा किये और पूरे पाँच महीने एवं चार दिन की तपस्या हुई । यों, चार परिपाटी इन ने कीं । जिसमें दो वर्ष और अट्ठाइस दिन लगे । इस तपस्या के हार का चित्र निम्न लिखित है :—

१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९
लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप															८
१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९

इस प्रकार के 'लघुसिंह निष्क्रीड़ित' तप की उन महाकाली आर्याजी ने सूत्रों में बताई हुई विधि के अनुसार

आराधना की। तत्पश्चात्, फिर भी उन आर्याजी ने फुटकर कई तपस्याएँ कीं। अन्तिम समय में सन्थारा कर के कर्मों का सम्पूर्ण नाश हो जाने पर, मोक्ष मे वे पहुँचीं। इसी तरह राजा श्रेणिक की पत्नी और कौणिक की छोटी माता, कृष्णा नामक रानी ने, भगवान् का उपदेश श्रवण कर श्री चन्दनबाला आर्याजी के पास दीक्षा धारण की। और, जिस प्रकार महाकाली आर्याजीने 'लघुसिंह निष्क्रीड़ित' नामक तप में, नौ तक की तपस्या की थी, ठीक उसी प्रकार इस तप की प्रथम परिपाटी-श्रृङ्खला इस प्रकार कीः-सर्व प्रथम उपवास किया। पारणा कर के बेला किया। पारणा कर के उपवास किया। यों तेला किया। बेला, चौला, तेला, पँचौला, चौला, छः, पाँच, सात, छः, आठ, सात, नौ, आठ, दस, नौ, ग्यारह, दस, बारह, ग्यारह, तेरह, बारह, चौदह, तेरह, पन्द्रह, चौदह, सोलह, पन्द्रह, सोलह, चौदह, पन्द्रह, तेरह, चौदह, बारह, तेरह, ग्यारह, बारह, दस, ग्यारह, नौ, दस, आठ, नौ, सात, आठ, छः, सात, पाँच, छः, चौला, पँचोला, तेला, चौला, बेला, तेला, उपवास, बेला, और फिर पारणा कर के उपवास किया। यों, एक परिपाटी की। जिसमें, इकसठ दिन उन सतीजी ने पारणा-भोजन किया और पूरे-पूरे एक वर्ष, चार महीने तथा सत्रह दिन, अर्थात् चार सौ सत्तानवें दिन तपस्या की। ऐसी एक परिपाटी कर के, साथ ही साथ, दूसरी, तीसरी और चौथी परिपाटी भी की। जिसमें पूरे-पूरे छः वर्ष, दो महीने और बारह दिन लगे। इस 'महानिष्क्रीड़ित-तप' की एक परिपाटी इस प्रकार हैः-

१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८	१०	९	११	१०	१२	११	१३	१२	१४	१३	१५	१४	१६
महासिंह निष्क्रीड़ित तप																													१५
१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८	१०	९	११	१०	१२	११	१३	१२	१४	१३	१५	१४	१६

इस प्रकार, कृष्णा आर्याजी ने महानिष्क्रीड़ित तपस्या विधि-पूर्वक कर के, फिर भी कई फुटकर तपस्याएँ कीं। अन्तिम समय में, सन्थारा कर के, काली आर्याजी के समान ये भी मोक्ष में पहुँची।

मूल:—एवं सुकरहावि, णवरं सत्तसत्तामियं भिक्खुपडिमं उवसंपाज्जित्ताणं विहरइ पढमे सत्तए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणयस्स दोच्चे सत्तए दो दो भोयणस्स दोदो पाणयस्स पडिग्गाहेइ, तच्चे सत्तए तिण्णि भोयणस्स तिण्णि पाणयस्स, चउत्थे चउ, पंचमे पंच, छट्ठे छ, सत्तमे सत्तए सत्त दत्तीओ भोयणस्स पडिग्गाहेइ सत्त पाणयस्स, एवं खलु सत्त सत्तामियं भिक्खुपडिमं एगूणपण्णाए राइंदिए हिं एगेणय छन्नउएणं भिक्खासएणं

अहासुत्ता जाव आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–इच्छामिणं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुराणाया समाणी अट्ठइमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेत्तए। अहासुहं देवाणुप्पिए मा पडिबंधं करेह।

भावार्थः–इसी तरह, राजा श्रेणिक की पत्नी और कौणिक की छोटी माता, सुकृष्णा नाम की रानी ने भी भगवान् महावीर का उपदेश श्रवण कर, श्रीचन्दनबाला आर्याजी के पास, दीक्षा धारण की। तत्पश्चात्, सुकृष्णा आर्याजी ने 'सप्त-सप्तमिका' नामक भिक्षु-पडिमा अङ्गीकार की। वह इस प्रकार है:–सात दिन तक नित्यप्रति एक बार गृहस्थों के द्वारा दिये हुए भोजन और पानी पर निर्वाह करना। अर्थात् एक वक्त में रोटी का पाव हिस्सा और एक बार की धारा में, जितना पानी दिया, तो उतना ही उस रोज खाते-पीते हैं; किन्तु दुबारा माँग कर फिर नहीं लाते हैं। यही क्रम सात दिन तक रक्खा जाय। इसी को 'सप्त-सप्तमिका-भिक्षु पड़िमा' कहते हैं। इसी प्रकार, दूसरे सप्ताह में, दो बार का दिया हुआ भोजन और पानी ग्रहण किया। और, फिर इसी प्रकार क्रमशः तीसरे सप्ताह में तीन बार, चौथे सप्ताह में चार बार, पाँचवें में पाँच बार, छठे में छः बार और सातवें सप्ताह में सात बार गृहस्थों द्वारा दिये गये भोजन और पानी को ग्रहण कर, उसी पर अपने प्राणों की

प्रति-पालना की । यों, उनपचास दिन तक इस प्रकार की सप्त भिक्षु पडिमा, सूत्र में जिस विधि से पाली जाती

सप्त-सप्तमिका

१	१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४	४
५	५	५	५	५	५	५
६	६	६	६	६	६	६
७	७	७	७	७	७	७

अष्ट अष्टमिका

१	१	१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४	४	४
५	५	५	५	५	५	५	५
६	६	६	६	६	६	६	६
७	७	७	७	७	७	७	७
८	८	८	८	८	८	८	८

है, उसी प्रकार 'सुकृष्णा' नामक आर्याजी ने इस तपस्या को समाप्त कर, वे श्रीमती चन्दनबालाजी आर्याजी के पास आई। और उन्हें वन्दना कर के बोलीं-हे देवानुप्रिये! मेरी इच्छा है, कि आपकी आज्ञा होने के पश्चात, 'अष्ट-अष्टमिका भिक्षु पडिमा' को अङ्गीकार कर के मही मे विचरण मैं करूं उत्तर में श्री चन्दनबालाजी ने फर्माया, जिस प्रकार भी तुम्हें सुख हो, वैसा ही करो। उसमें विलम्ब को रत्ती-भर भी स्थान न दो।

मूलः-तए णं सा सुकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुण्णायसमाणी अट्ठअट्ठमियं भिक्खु पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्सदत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणगस्स। एवं जाव अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठभोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ अट्ठपाणगस्स दत्तिं। एवं खलु एयं अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहिय अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता नवनवमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे नवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइय एक्केक्कं पाणयस्स जाव नवमे नवए नव दत्तिं भोयणस्स पडिग्गाहेइय नवनव पाणयस्स। एवं खलु नवनवमियं भिक्खुपडिमं एका सीई राइंदिएहिं चउहि पंचोत्तरेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्ता जाव आराहित्ता दस दसमि

यं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढ़मे दसए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइय एक्केक्कं पाणयस्स जाव दसमे दसए दस दस भोयणस्स दत्तिं पडिग्गाहेइ दसदस पाणयस्स एवं खलुएयं दस दसामियं भिक्खुपडिमं एकेणं राइंदियसएणं अद्ध छट्टेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहेइ २ त्ता बहूहिं चउत्थ जाव मासद्धमास विविहतवो कम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ। तए णं सा सुकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव सिद्धा।

भावार्थः–सप्त-सप्तमिका भिक्षुपड़िमा कर लेने के बाद उन 'सुकृष्णा' नामक आर्याजी ने श्रीमती चन्दन-बालाजी से, अष्टम-अष्टमिका भिक्षुपड़िमा करने की आज्ञा प्राप्त की और तदनुसार तपस्या करना शुरू किया। प्रथम के अठवाड़े (आठ दिनों) में, नित्यम्प्रति एक दात पानी की और एक दात भोजन की, अर्थात् गृहस्थियों द्वारा दिये हुए एक बार के आहार और पानी को ग्रहण कर, उसी पर निर्वाह किया। इसी प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे पाँचवें, छठे, सातवें और आठवें अठवाड़े में, नित्यम्प्रति क्रमशः दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, और आठ बार गृहस्थियों द्वारा दिये गये आहार और पानी को ग्रहण कर उसी पर अपना जीवन धारण वे करतीं रहीं। यों सम्पूर्ण पडिमा में कुल चौंसठ दिन लगे। और दो सौ अठासी दात हुई। अर्थात् दो सौ अठासी बार आहार पानी लिया गया। इसी प्रकार नव-नवमिका भिक्षुपड़िमा की। प्रथम नवमिका, अर्थात् प्रत्येक नौ-नौ दिनों में

नित्यम्प्रति, एक-एक दात पानी की और एक-एक दात भोजन की उन्होंने ली। ऐसे ही दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं और नौवीं नवमिका में, नित्यम्प्रति क्रमशः दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ और नौ बार गृहस्थियों द्वारा बहराये गये. आहार और पानी को ग्रहण कर, उसी से अपना निर्वाह किया। इस 'नव-नवमिका-भिक्षु पड़िमा' में पूरे-पूरे एक्यासी दिन लगे। और चार सौ पाँच बार का दिया हुआ आहार-पानी ग्रहण किया गया। इस 'नव-नवमिका भिक्षुपड़िमा' को समाप्त कर लेने के पश्चात्, उन्होंने 'दस-दशमिका भिक्षु-पडिमा' अङ्गीकार की। प्रथम दशमिका, अर्थात् प्रथम के दश दिनों में, नित्यम्प्रति एक बार का दिया हुआ भोजन और पानी ग्रहण किया। यों, दूसरी, तीसरी चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं नौवीं और दशवीं दशमिका में, नित्यम्प्रति, क्रमशः एक से लगाकर दश बार गृहस्थियों द्वारा दिये गये आहार और पानी को ग्रहण कर, उसपर अपना जीवन निर्वाह किया। इस तपस्या को पूर्ण करने में कुल सौ दिन लगे। जिसमें भोजन और पानी की साढ़े पाँच सौ दात्त हुई। इस तपस्या को पूर्ण कर लेने के पश्चात्, उपवास, बेले, तेले, मासक्षमण, अर्द्ध मास-क्षमण की भी तपश्चर्या इन्होंने की। जिस से श्री सुकृष्णा आर्याजी का शरीर बड़ा ही कृश हो गया। किन्तु फिर भी, अन्तिम समय में, सन्थारा कर के, सम्पूर्ण कर्मों का नाश करती हुई, वे मोक्ष-धाम में पहुँचीं।

उपरोक्त 'नव-नवमिका' और 'दश-दशमिका' भिक्षुपड़िमा तप के यन्त्र निम्न प्रकार हैं:-

नवक-नवमिका

१	१	१	१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४	४	४	४
५	५	५	५	५	५	५	५	५
६	६	६	६	६	६	६	६	६
७	७	७	७	७	७	७	७	७
८	८	८	८	८	८	८	८	८
९	९	९	९	९	९	९	९	९

 दश-दशमिका

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०

मूलः—एवं महाकण्हावि णवरं खुड्डागं सव्वओभद्दं पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ तं जहा—चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता छट्ठं करेइ२ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दशमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २त्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ२ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२त्ता अट्ठमं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम-

गुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ२त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२त्ता। एवं खलु एवं खुड्डागसव्वओ भद्दस्स तवो कम्मस्स पढ़मं परिवाडिं।तेहिं मासेहिं दसहिं दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहेत्ता दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ २ त्ता विगइवज्जं पारेइ विगइवज्जं पारेत्ता जहा रयणावली ए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ पारणा तहेव। चउण्हं कालो सवच्छरो मासो दस य दिवसा, सेस तहेव जाव सिद्धा।

भावार्थः-इसी तरह, राजा श्रेणिक की पत्नी और कौणिक की छोटी माता, महाकृष्णा रानी ने, भगवान् महावीर का उपदेश श्रवणकर, श्रीमती चन्दनबाला आर्याजी के पास दीक्षा धारण की। तत्पश्चात्, श्रीचन्दनबालाजी की आज्ञा प्राप्त कर, 'लघुसर्वतोभद्र' नामक तपस्या की आराधना इन ने की। वह इस प्रकार है:--सर्व प्रथम, उपवास किया। पारणा कर के बेला किया। पारणा कर के तेला किया। यों, चोला, पँचोला, तेला, चौला, पँचोला,

उपवास, बेला, पँचोला, उपवास, बेला, तेला, चोला, बेला, तेला, चोला, पँचोला, उपवास, चोला, पँचोला, उपवास, बेला और तेला किया। इस प्रकार 'लघु सर्वतोभद्र' नामक तप की एक परिपाटी—लड़ी—उन श्री महा-

लघुसर्वतोभद्र तप

१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
७	५	१	२	३

कृष्णा आर्याजी ने पूरी की। जिसके करने में कुल पचहत्तर दिन की तपस्या और पच्चीस दिन पारणे के होते हैं। इस परिपाटी को समाप्त कर, साथ ही साथ, दूसरी परिपाटी भी इसी प्रकार की। किन्तु पारणे में दूध, दही, घी, तैल,

मिष्टान्न, खाना बिलकुल बन्द कर दिया । तीसरी परिपाटी में, पारणे के दिन, लूकी रोटी खाना प्रारम्भ किया । अर्थात्, घी, तेल के लेप-मात्र वाली सम्पूर्ण वस्तुओं का खाना ही बिलकुल बन्द कर दिया । और चौथी परिपाटी में पारणे के दिन आयम्बिल किये । जिस प्रकार 'रत्नावलि' तपस्या की चार परिपाटी शृङ्खला होती है, उसी प्रकार इस तपस्या की चारों परिपाटियों की सूत्रानुसार आराधना की । जिसमें पूरे तीन सौ दिन तपश्चर्या के और सौ दिन पारणे के होते हैं ।

महाकृष्णा आर्याजी ने इस लघुसर्वतोभद्र तपस्या करने के पश्चात्, फिर भी अनेकों छोटी-बड़ी फुटकर तपस्याएँ कीं । अन्तिम समय में सन्थारा ले अपने सर्व कर्मों को नष्ट करते हुए, उन्होंने सदा के लिए जन्म-मरण से छुटकारा पाया ।

मूलः—एवं वीर कण्हा वि, णवरं महालयं सव्वतोभद्दं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तं जहा-चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउदसं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता

पढ़मालया दसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम-
गुणियं पारेइ २ त्ता चउदसं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २
त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं
करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता
बितियालया सोलसं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकाम-
गुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ ता सव्व-
कामगुणियं पारेइ २त्ता दसमं करेइ२ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता
सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउदसं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता तितिया
लया । अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं
पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता
सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थं करेइ

२ त्ता सव्वंकागुणियं पारेइ २ त्ता छट्टं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थीलया। चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्टं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता पंचमीलया। छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छठीलया। दुवालसमं करेइ २त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २

त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ२ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सतमी लया। एक्केकंलयाए अट्ठ मासा पंच य दिवसा. चउण्हं दो वासा अट्ठ मासा वीसं दिवसा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।

भावार्थः-जम्बू ! अन्तगढ-सूत्र के सातवें अध्याय में, वीरकृष्णा, जो कि श्रेणिक राजा की पत्नी और कौणिक की छोटी माता कही गई हैं, उन्होंने भगवान् का उपदेश पाकर, श्रीमती चन्दनबाला आर्याजी के पास दीक्षा धारण की। जिनका वर्णन है, कि उन वीरकृष्णा आर्याजी ने दीक्षा लेने के अनन्तर अपनी जननी समान श्रीमती गुराणीजी की आज्ञा लेकर, 'महासर्वतोभद्र' नामक तपस्या करना प्रारम्भ की। सबसे पहले उपवास किया। पारणा करके बेला किया। पारणा करके तेला किया। यों चौला, पंचौला, छः, सात, चौला, पँचोला, छः, सात, उपवास, बेला, तेला, सात, उपवास, बेला, तेला, चौला, पँचोला, छः, तेला, चोला, पँचोला, छः, सात, उपवास, बेला, छः, सात, उपवास, बेला, तेला, चौला, पँचोला, बेला, तेला, चौला, पँचोला, छः, सात, उपवास, पँचोला, छः, सात, उपवास, बेला, तेला, और, चौला, किया। इस प्रकार इस तप का यह एक परिपाटी हुई। इसे कर के, साथ ही साथ, दूसरी परिपाटी शुरू की। परन्तु इस बार पारणे में, दूध, दही, घी, आदि विगय

(स्निग्ध पदार्थ) खाना बन्द कर दिया। इसी तरह तीसरी परिपाटी भी की। किन्तु इस तपस्या के पारणे के दिन घी, मिष्टान्न, आदि विगयों से लेपित मात्र वस्तुओं तक का परित्याग कर दिया। केवल लूका भोजन किया।

महासर्वतोभद्र तप ☜

१	२	३	४	५	६	७
४	५	६	७	१	२	३
७	१	२	३	४	५	६
३	४	५	६	७	१	२
६	७	१	२	३	४	५
२	३	४	५	६	७	१
५	६	७	१	२	३	४

चौथी परिपाटी की तपस्या के पारणे के दिन तो लूके भोजन को भी पानी में भिगो कर खा लेने का नियम लिया। इस तप की एक परिपाटी करने में तपस्या के दिन एक सौ छन्नवें लगते हैं। और पारणे के उनपचास दिन होते हैं।

ये, कुल दो सौ पैतालीस दिन इसमें एक-बार लगते हैं। चारों ही परिपाटियों के करने में कुल दो वर्ष, आठ मास और बीस दिन पूरे-पूरे लगते हैं।

उन वीर कृष्णा आर्याजी ने इस 'महासर्वतोभद्र' नामक तपस्या को करने के पश्चात् फिर भी छुटकर तपस्या बहुत की। अन्तिम समय मे सन्थारा कर के मुक्ति में पहुँचीं हैं।

मूलः—एवं राम कण्हावि, णवरं भद्दोत्तर पडिमं उवसंपज्जि त्ताणं विहरइ तं जहा—दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बीसइयं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगु-णियं पारेइ २ त्ता वीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ२ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता वीस-इमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं

पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता वीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता वीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता। एक्काए कालो छम्मासा वीस य दिवसा, चउण्हं कालो दो वरिसा दो मासा वीस य दिवसा, सेसं तहेव जहा काली जाव सिद्धा।

भावार्थः इसी प्रकार, राजा श्रेणिक की रानी और कोणिक की छोटी माता रामकृष्णादेवी भी भगवान महा-

वीर का उपदेश श्रवणकर, श्री चन्दनबालाजी के द्वारा दीक्षित हुई। इन नव-दीक्षित श्री रामकृष्णा आर्याजी ने अपनी पूज्या गुराणीजी की आज्ञा प्राप्त कर, ' भद्रोत्तर ' नामक तपस्या को नीचे लिखेऽनुसार करना प्रारम्भ किया:–सब से प्रथम पँचोला किया। पारणा कर के छः किया। पारणा कर के सात किया। यो आठ, नौ, सात,

भद्रोत्तर तप

५	६	७	८	९
७	८	९	५	६
९	५	६	७	८
६	७	८	९	५
८	९	५	६	७

आठ, नौ, पाँच, छः, नौ पाँच, छः सात, आठ छः, सात, आठ, नौ, पाँच, आठ, नौ, पाँच, छः, और सात, किये। इस प्रकार एक परिपाटी पूरी हुई। यों चार पूरी-पूरी परिपाटियाँ उन्होंने कीं। दूसरी परिपाटी के पारणे के दिनों में, समस्त विगय वस्तुओं का सेवन बिलकुल ही छोड़ दिया। तीसरी परिपाटी में, विगय की लेपित-मात्र वस्तुओं का त्याग किया। और चौथी परिपाटी के पारणों में आयम्बिल किये। एक बार की परिपाटी-शृङ्खला में

कुल एक सौ पिचहत्तर दिन तपस्या और केवल पच्चीस दिन पारणे के होते हैं। यों, चारों ही में कुल दो वर्ष, दो मास और बीस दिन होते हैं।

रामकृष्णा आर्याजी के द्वारा, इस 'भद्रोत्तर' नामक तप को करने के पश्चात्, छुटकर और भी काफी मात्रा में कई तपश्चर्याएँ की गईं। अन्तिम दिनों में सन्थारा कर के मुक्ति में वे पहुँचीं।

मूलः—एवं पिउसेणकण्हा वि, णवरं मुक्तावली तवोकम्मं उव संपज्जित्ताणं विहरइ, तंजहा-चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता। छट्ठं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दसमं करेइ २ त्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता दुवालसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चोद्दसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता सोलसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं

पारेइ २ त्ता अट्ठारसमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्व-
कामगुणियं पारेइ २ त्ता वीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ
२ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता वावीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता
चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउवीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं
पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेता २ त्ता छव्वीसइमं करेइ २ त्ता
सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता अट्ठावीसं
करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता
तीसइमं करेई २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं
पारेइ २ त्ता वत्तीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता सव्व-
कामगुणियं पारेइ २ त्ता चोत्तीसइमं करेइ २ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता चउत्थं करेइ
२ त्ता सव्वकामगुणियं पारेइ २ त्ता बत्तीसइमं करेइ २ त्ता। एवं तहेव ओसारेइ जाव चउत्थं

करेइ चउत्थं करेइत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ । एक्काए कालो एक्कारस्समासापनरस य दिवसा चउराहं तिरिहि वरीसा दस य मासा । सेसं तहेव जाव सिद्धा ।

भावार्थः--इसी प्रकार राजा श्रेणिक की रानी और कोणिक की छोटी माता, पितु सेन कृष्णा देवी ने भगवान् का उपदेश श्रवण कर श्रीमती चन्दनबालाजी आर्याजी के शरण में जाकर दीक्षा धारण की । इन पितुसेन कृष्णा आर्याजी ने, अपनी गुरार्णीजी की आज्ञा प्राप्त कर ' मुक्तावलि ' नामक तपस्या नीचे के अनुसार की:- सर्व प्रथम उपवास किया । पारणा कर के बेला किया । पारणा कर के उपवास किया । पारणा कर के तेला किया । यों, एक-एक उपवास बीच बीच में करतीं हुईं, इनकी संख्या को सोलह तक इन्होंने पहुँचाया । फिर इसी प्रकार बीच-बीच में, उपवास करती हुईं जिस प्रकार चढ़ी था, उसी प्रकार एक उपवास तक वे उतरीं । इस प्रकार एक परिपाटी हुई । यूँ. काली रानी की तरह, चारों ही परिपाटियाँ-लड़ियाँ-उन्होने सम्पूर्ण कीं । इसकी एक परिपाटी में पूरे-पूरे उनसाठ दिन पारणा के और अवशेष तपस्या के दिन यूं कुल मिला कर ग्यारह महीने और पन्द्रह दिन होते हैं । चारों ही परिपाटियों के करने में कुल तीन वर्ष और दस महीने होते हैं । इस मुक्तावलि तपस्या का यन्त्र इस प्रकार है:—

१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१	११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१	१६	१
मुक्तावलि स्थापना																														
१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१	११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१	१६	१

मूलः—एवं महासेण कराहा वि, णवरं आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तंजहा—आयंबिल करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता बे आयंबिलाइं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता तिरिण आयंबिलाइं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता चत्तारि आयं-बिलाइं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता पंच आयंबिलाइं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता छ आयंबिलाइं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ २ त्ता एकोत्तरियाए वड्ढीए आयंबिलाइं वड्ढंति चउत्थतरियाइं जाव आयंबिलसयं करेइ २ त्ता चउत्थं करेइ ।

भावार्थः--इसी तरह राजा श्रेणिक की रानी और कोणिक की छोटी माता, 'महासेन कृष्णा' नामक देवी ने

भी यथा-समय, श्री भगवान् महावीर का धर्मोपदेश सुनकर, श्रीमती चन्दनबाला आर्याजी के पास दीक्षा अङ्गीकार की उन्हों ने अपनी पूजनीया गुराणीजी की आज्ञा लेकर, 'आयम्बिल-वर्द्धमान' नामक तपस्या की। उसमें सर्व प्रथम, एक आयम्बिल किया। दूसरे दिन उपवास किया। फिर दो आयम्बिल किये। उपवास किया। तीन आयम्बिल किये। उपवास किया। चार आयम्बिल किये। उपवास किया। पांच आयम्बिल किये। उपवास किया। छः आयम्बिल किये। उपवास किया। यों, बीच-बीच में उपवास करते हुए, पूरे-पूरे एक सौ आयम्बिल किये। और, उपवास किया। इस तपस्या का यन्त्र इस प्रकार है:—

१	१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१	११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१
१६	१	१७	१	१८	१	१९	१	२०	१	२१	१	२२	१	२३	१	२४	१	२५	१	२६	१	२७	१	२८	१	२९	१	३०	१
३१	१	३२	१	३३	१	३४	१	३५	१	३६	१	३७	१	३८	१	३९	१	४०	१	४१	१	४२	१	४३	१	४४	१	४५	१
४६	१	४७	१	४८	१	४९	१	५०	१	५१	१	५२	१	५३	१	५४	१	५५	१	५६	१	५७	१	५८	१	५९	१	६०	१
६१	१	६२	१	६३	१	६४	१	६५	१	६६	१	६७	१	६८	१	६९	१	७०	१	७१	१	७२	१	७३	१	७४	१	७५	१
७६	१	७७	१	७८	१	७९	१	८०	१	८१	१	८२	१	८३	१	८४	१	८५	१	८६	१	८७	१	८८	१	८९	१	९०	१
९१	१	९२	१	९३	१	९४	१	९५	१	९६	१	९७	१	९८	१	९९	१	१००	१	*	*	*	*	*	*	*	*	*	*

मूल:—तएणं सा महासेन कराहा अज्जा आयंबिलवड्ढमाणं तवो कम्मं चोद्दसहिं वासेहिं तिहि य मासेहिं वीसहिय अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव सम्मं काएणं फासेइ, जाव

आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थे हिं जाव भावेमाणी विहरइ। तएणं सा महासेन कराहा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव उवसोभेमाणी चिट्ठइ।

भावार्थः—उन महासेन कृष्णा आर्याजी ने 'आयम्बिल वर्द्धमान' तपस्या करने में पूरे-पूरे चौदह वर्ष, तीन मास और बीस दिन लगाये। जिस प्रकार सूत्रों में विधि-विधान इस तपस्या के लिए बतलाया गया है, उसी प्रकार इन आर्याजी ने, सम्यक् प्रकार से इसका आराधन करके, श्री चन्दनबालाजी के पास वे आईं। और उन्हें वन्दना करके, फिर भी छुटकर तपस्या में जुट पड़ीं। ऐसी तपस्या करने से इन महासेन कृष्णा आर्याजी का शरीर, रुधिर और मास से प्रायः रहित, अर्थात् दुर्बल हो गया। पर तपस्या के प्रभाव से शरीर इनका तेजोमय और अनुपम कान्तिशाली बना रहा।

मूलः—तएणं तीसे महासेणकराहाए अज्जाए अराणया कयाइं पुव्वरत्ता वरत्तकाले चिंता जहा खंदयस्स जाव अज्ज चंदणं अज्जं आपुच्छई जाव संलेहणा, कालं अणव कंखमाणी विहरइ। तएणं सा महासेण कराहा अज्जा, अज्जचंदणाए अज्जाए अंतिए सा-

माइयाइं एकारस्स अंगाइं अहिज्जित्ता बहू पडि पुन्नाइं सत्तरस वासाइं परियायं पालइत्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ जाव तमट्ठं आराहेइ चरिम उस्सासणीसासेहिं सिद्धा बुद्धा। अट्ठ य वासा आदी एकोत्तरीयाए जाव सत्तरस। एसो खलु परिताओ सेणिय भज्जाण णायव्वो।

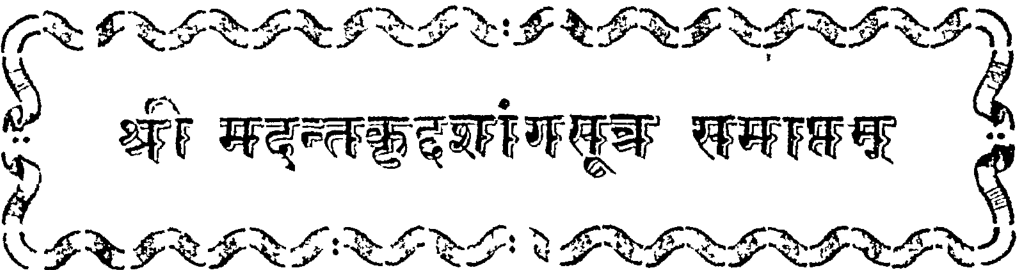
भावार्थः—तत्पश्चात्, उन महासेन कृष्णा आर्याजी को एक दिन पिछली रात्रि में, खन्दक की तरह विचार उत्पन्न हुआ, कि जो भी मेरा शरीर इस तपस्या से ऐसा कृश हो गया है। तथापि कुछ और शक्ति मुझ में है। अतः कल सूर्योदय होते ही, श्रीमती चन्दनबालाजी से पूछ कर मुझे सन्थारा कर लेना चाहिए। तदनुसार प्रातः काल होते ही उन्होंने अपनी धर्म-जननी गुरुणीजी की आज्ञा प्राप्त कर सन्थारा ले लिया। अर्थात् 'यश के लिए मैं अधिक जीऊँ' या 'दुख के कारण मैं शीघ्र ही मरूँ' इन सम्पूर्ण प्रकार के सङ्कल्प-विकल्पों से रहित होकर, समाधिमार्ग में प्रसन्न चित्त से वे रहने लगीं। इन महासेन कृष्णा आर्याजी ने श्री चन्दनबालाजी से, सामायिक से लगा कर ग्यारहों अङ्गों तक का सर्वाङ्ग ज्ञानाध्ययन कर लिया। लगातार के सतरह वर्षों तक चारित्र का पालन किया। अन्तिम समय में, पूरे एक मास का सन्थारा कर, अन्तिम श्वासोश्वास में अपने सम्पूर्ण घनघाती कर्मों को नष्ट कर, मुक्ति में वे पहुँची। काली आर्याजी ने आठ वर्ष चारित्र पाला। दूसरी सुकाली ने नौ वर्ष। यों क्रमशः

एक-एक वर्ष हुई महासेन कृष्णा ने पूरे-पूरे सतरह वर्षों तक चारित्र का पालन किया। ये दसों ही राजा श्रेणिक की रानियाँ थीं। और, कौणिक की छोटी माताएँ।

मूलः—एवं खलु जंबु ! समणे णं भगवया महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगड़दसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते तिबेमि। अंतगड़दसाणं अंगस्स एगो सुयखंधो अट्ठवग्गा अट्ठ सु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति,तत्थ पढ़म वितिय वग्गो दस दस उद्देसगा, तइयवग्गे तेरस उद्देसगा, चउत्थ पंचमवग्गो दस दस उद्देसया छट्ठवग्गे सोलस उद्देसगा, सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा, अट्ठमवग्गे दस उद्देसगा। सेसं जहा नाया धम्म कहाणं।

भावार्थः हे जम्बू ! धर्म के प्रकट करने वाले, श्रमण भगवान महावीर जो मोक्ष में पधार गये, उन्होंने आठवें अङ्ग 'अन्तगड़-सूत्र' का यह भाव फर्माया है। उसे मैंने ज्यों का त्यों तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया। इस अन्तगढ़ में एक श्रुतस्कन्ध और आठ वर्ग हैं। और, जिन्हें केवल आठ ही दिनों में भगवान् ने फर्माया है। इस के प्रथम और दूसरे वर्गों में क्रमशः दस-दस अध्याय हैं। तीसरे वर्ग में तेरह, और चौथे तथा पाँचवें वर्गों में फिर दस-दस अध्याय हैं। छठे वर्ग में सोलह अध्याय। सातवें वर्ग में तेरह और आठवें वर्ग में दस अध्याय हैं। अवशेष ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र के अनुसार जानना चाहिए।





श्री मदन्तकृद्दशांगसूत्र समाप्तम्

